जिलाधीश की वापसी

भगवती शरण मिश्र

विद्या प्रकाशन मन्दिर
नई दिल्ली-110002

लेखक

मूल्य रु० 30 00

सस्करण 1988

प्रकाशक विद्या प्रकाशन मदिर, 1681, दरियागज, नई दिल्ली 2

मुद्रक पूजा प्रेस, नवीन शाहदरा, दिल्ली 32

ZILADHISH KI VAPSI by Bhagwati Sharan Mishra

Rs 30 00

समर्पण

राष्ट्रीय स्तर के ख्यातिलब्ध राजनेता,
सहृदय समाज सेवी
प्रखर चिंतक एव विद्वान।

श्री केदार पाण्डेय जी
को सादर

भगवती शरण मिश्र

क्रम

नीलकण्ठ

लेटर-बाक्स की जीभ को छूते समय शीला के हाथ आखिरी बार कांपे थ, पर उसने उस नग पोस्टकाड को चन्द बेतरतीब पंक्तियो के साथ उसके पट म उतार ही दिया। ऐसा करत समय उसे लगा जैसे उसने किसी उफनते दूध के बरतन पर पानी का एक जबरदस्त छींटा मार दिया हो, अथवा किसी करत के उठे हुए फन पर डण्डे की एक करारी चोट जड दी हो। हा, यही होना चाहिए था—दशाश्वमेध के कोने के उस लेटर बाक्स म अपना सारा आक्रोश उगल अपने अन्तर म उठ रही भावनाओं के प्रबल तूफान को उसने अपने निर्णय के औचित्य से दबाना चाहा था। अब जब उसके अन्दर सुरेश के लिए कही कुछ पसीजता ही नही तो इसम उसका क्या दोष? और तब सिवा इसके कि वह सुरेश के अन्दर फूट अपने प्रति स्निग्धता और सौहार्द के प्रवाह पर अपनी वितृष्णा और असहमति की चट्टान पटक दे, उसके पास और चारा ही क्या है? नही, उसने जो कुछ किया वह ठीक ही किया है। उसने अपने मन को सान्त्वना दी—सुरेश से उसका अब कोई सम्बन्ध नही है।

दशाश्वमेध की भीड भरी सडक को पार कर वह घाट तक आ गयी। गगा का पानी नीचे खिसक गया था और धार तक पहुचती नगी सीढिया की पाषाणी पंक्ति किसी उजडी माग की नगी लकीर सी लग रही थी। कही ऐसी ही तो अन्दर से वह नगी और वीरान नही हो गयी—एक क्षण के लिए उसके अन्दर कुछ खटका जैसे किसी नगी सीढी से पानी की एक धार टकरायी हो। पर, दूसरे ही क्षण वह आश्वस्त हुई, जब तक शेखर है तब तक उसके अन्दर का हर कोना आबाद रहेगा। खट खटकर वह सीढिया उतरने लगी और साथ ही उसका मन अतीत के गह्वर म एक के बाद एक अनगिनत सीढिया उतरता चला गया था और उसे यह सब बहुत आह्लाद-पूर्ण और अनूठा लगा था, जैसे किसी शान्त झील की छाती का किसी

शिकार न मथकर आन्दोलित कर दिया हो।

सीढ़िया उतरती शीला घाट के समीप आ गयी। पश्चिम के डूबते सूर्य ने गंगा के पानी पर ढेर सा रंग उगल दिया था और शीला को लगा, मानो अभी-अभी किसी की हत्या हो गयी है और उसके रक्त से पूरा का पूरा पानी लाल हो गया हो। उसे लगा, यह हत्या चाँद और हत्या नहीं बल्कि अभी-अभी उसके हाथों सम्पादित सुरेश के प्यार की, उसकी भावनाओं की ही निमम हत्या है और उसके खूनी हाथों के स्पर्श से ही गंगा का पानी रक्तिम हो उठा है। उसे लगा उसके हाथ 'डंकन की हत्या करने वाले मैकबेथ के हाथों से कम दूषित नहीं और वह चाहे तो संसार के सारे समुद्रों को अपने हत्यारे हाथों के एक स्पर्श में ही रक्तिम कर सकती है।

तट से उसने एक छोटी सी नौका की ओर भावनाओं के प्रबल वेग से आन्दोलित अन्तर लिये, धार पर बहती नौका से किनारे पर उतरती उदास संध्या को निहारती रही। वाराणसी के तट उसे कभी भी अनाकर्षक और मनहूस नहीं लगे। किनारों पर खड़ी आकाशभेदी अट्टालिकाएं उनके कंगूरों पर बसेरा बनाये गुटर गूं करते कबूतरों की जोड़ियां त्रिपुण्डधारी पण्डितों से शोभित वितान सी तनी छतरियां और गंगा की उठती गिरती ऊर्मियों को देखने के लिए सीढ़ियों और कगारों पर जमी दर्शकों की टोलियां हमेशा उसके मन को बांधती रही हैं। मार्च में छोटी छोटी छुट्टियों में लौटे शेखर के साथ जब जब उसने गंगा में नौका विहार का प्रोग्राम बनाया है तब-तब वाराणसी के ये भीड़ भरे किनारे, गंगा की ये शोख लाल ऊर्मियां और किसी अल्हड़ अभिसारिका सी शनै शनै कूलों पर उतरती संध्या की ये रंगीनियां निखर निखर आयी हैं। खास कर पूरे चांद की रातों में जब जब शेखर उसे गंगा की इन लहरों पर खींच लाया है, तब-तब पिघलते चांद के नीचे शेखर के अंक में निढाल-सी पड़ी शीला ने यह सोचा है कि संसार के सारे सुख उसी के आंचल में सिमट आये हैं और हर ऐसे अवसर पर शेखर की आंखों में अपनी आंखें डालने का प्रयत्न करते हुए शीला ने पूछा है "इस चांद को देखते हो शेखर?"

किस चांद को, धरती के या आसमान के?" हलकी शीतल बयार

के द्वारा उलया दी गयी शीला की लटा स खेलते हुए शेखर न कहा है।

"धत्! तुम्हे ता छेडखानी की ही सूझती है। मैं आसमान के चाद की बात कर रही थी। देखा तो आज कैसा भरा पूरा लग रहा है, पूरे बल से घटत घटत कहीं तुम्हारा प्यार भी इसी तरह ।' और यहीं पर शेखर न उसके फडफडाने होठो पर अपनी कापती अगुलियाँ रख दी है "तुम सभी को सुरेश ही समझती हो शीला!" पर एस हर क्षण म शीला के सारे स्वप्न बिखर गये हैं जैसे किसी अबोध बालक न अजुरिया म बधे फूलो पर हाथ मार दिया हो। सुरेश की याद अतीत की कब्र स किसी खण्डहर पर पनप आय बिरवे सी उठ आयी है और एक दर्द से उसका दिल कराह पडा है। हर एस अवसर पर उस लगा है, जस पूजा के अक्षतो म मुह मारते बकरे को किसी ने बलि का खड्ग दिखा दिया हो। भला इसमे सुरेश का दोष ही कितना है! हर बार उसने सोचा है—शेखर सुरेश और उसके बीच नहीं टपक आया होता तो आज शीला के सिर के नीचे शेखर के बदले सुरेश की ही जाघें होतीं। शेखर शायद उसके मन के द्वन्द्व को भाप जाता है और बोलता है, 'सुरेश की याद आ गयी न?'

नहीं तो, भला एस समय भी किसी दूसरे की ।' हर बार यह झूठ उसकी जबान पर चढ आया है और हर बार उसने यह अनुभव किया है कि ठीक एस ही मौको पर दिल के किसी कोने म सोई सुरेश की याद अग डाई लेकर जाग पडती है और शीला के सपने हरसिंगार के सुबह के फूलो के समान झड पडते है। पर अब उसे यह याद भले हो किसी तिक्त औषधि की कडवी घूट-सी अप्रिय लगती हो, पर वह जानती है कि एक समय ऐसा भी था जब सुरेश के इशारो म खोई वह ससार के हर आकर्षण को लात मारने को प्रस्तुत थी।

काश यह सब नहीं हुआ होता! धारा की तीरवर्ती नाव मणिकर्णिका पर पहुच गयी थी। चट चटकर जलती जली-अधजली लाशें उदास सन्ध्या के आचल म अगार भर रही थीं और शीला का मन अतीत के खण्डहरो म उदास आवारा भटक रहा था। काश, सुरेश से वह इतनी दूर नहीं आ गयी होती! न चाहते हुए भी उसके अन्दर कहीं नीचे से एक हूक उठी और वह अव्यवस्थित-सी हो गयी जैसे पृथ्वी के गर्भ म सोये किसी ज्वाला-

मुखी ने एक दीर्घ निःश्वास ली हो और धरती की छाती काँप गयी हो। नहीं उसे सुरेश को वह पत्र नहीं छोड़ना था। शीला को लग रहा था, उसके निर्णय का औचित्य किसी मूलविहीन पौधे की तरह भावनाओं की झंझा में बेबस काँप रहा है। बहुत होता, वह सुरेश के पत्र का जवाब ही नहीं देती उसके मस्तिष्क ने समाधान रखा, पर किसी के प्यार भरे दिल को काँच के प्याले की तरह किसी चट्टान पर दे मारना कोई न्याय नहीं है।

"हर सुख क्षण स्थायी होता है, शीला ! मुझे लगता है, शायद हमारा साथ भी बहुत लम्बा नहीं हो। सुरेश उन दिनों अक्सर कहा करता था और शीला उसकी बात को सुनी-अनसुनी कर वह पड़ती थी, "चान्दनी को कोई चाँद से अलग नहीं कर सकता सुरेश !" और आज कहाँ चाँद और कहाँ चाँदनी ! काश, शीला को यह पता होता कि चाँदनी चाँद की ही चीज है किसी तारे के आगोश में वह नहीं सिमट सकती !

'तुम बहुत भावुक हो शीला, बहुत योग्य भी। तुमने एम० ए० किया है, संगीत और नृत्य में तुम एक ही कुशल हो। मैं सेना का एक अफसर हुआ तो क्या हूँ तो इण्टर ही। मुझे भय है कहीं मैं तुम्हें खो न दूँ।' शेखर ने अक्सर यह बात उठाई है और हर ऐसे समय अनाड़ी सर्जन की तरह उसने एक भरते घाव को कुरेद दिया है।

'एक बात जानती हो शीला ?" एक बार उसके ड्राइंगरूम में बैठे हुए शेखर ने पूछा था। चार दिनों की छुट्टी में वह काश्मीर-मोर्चे से आया था। छुट्टियों में घर जाने के बदले वह वाराणसी ही आ जाता था और शीला का मेहमान बनता था। उस दिन जब वह अकस्मात आ पहुँचा तो शीला अपने ड्राइंगरूम में बैठी सुरेश की लिखी एक पुस्तक के पन्ने उलट रही थी।

क्या ?' उसने अन्यमनस्क-सी होकर पूछा था। वह जानती थी कि हर एक मौके पर शेखर कोई निराशापूर्ण बात बताता है कोई कुण्ठाग्रस्त बात ! छि शेखर जान पाता कि प्यार के पहले समानता असमानता की बात जो उठनी होगी उसके बाद इसका कोई प्रश्न ही नहीं रहता ! काश, वह अपने अभावों के प्रति इतना सजग रह सुरेश को भूलने में इतना बड़ा व्यवधान नहीं बनता !

आखों में आखें डाल अपने प्रति प्यार की गहराई का अनुभव न कर सके, तो यार तुम्हारा जो पेट भर दे तुम्हारे अन्दर आस्था नहीं उत्पन्न कर सकती।' पर सुरेश यही गलती करता था, पुरुष और नारी में अन्तर अनुभव करने में उसका अव्यवहारिक मस्तिष्क असफल रहा था। पुरुष नारी की आखों में अपना प्रतिबिम्ब देख आश्वस्त हो सकता है पर स्त्री में प्रशंसा प्रिय सन्दिग्धता और अनास्थाग्रस्त नारी का उनमें सन्तोष नहीं होता। मूक प्यार से ज्यादा आवश्यक उसके लिए मिथ्या प्रशंसा है न जाने इस लघु सत्य को पुरुष कब समझ पायेगा। और यही कारण है कि आज सुरेश का हृदय जिस रत्न के प्रकाश पर मुग्ध हो उसे अपना सर्वस्व मान बैठा था, उसी की दाहक आच में वह आज तिल तिलकर जल रहा है।

बेचारा सुरेश! उसे क्या पता था कि जिस देवी को वह पवित्र और पूज्या मान अपनी अर्चना में पुष्प चढ़ाये जा रहा है उसके अन्दर किसी क्रूर राक्षसी का एक घृणित हृदय बसता है। हवा के एक तेज झोंके के साथ शीला की नाव एक क्षण के लिए डगमगा गयी, पर नाविक ने उसे सम्हाल लिया। जीवन की जिन्दगी की नाव के लिए भी एक योग्य नाविक की आवश्यकता होती है पर जहा नाविक ही अविश्वास और हीन भावना से ग्रस्त हो वहां नाव की खैर कौन मनावे! नहीं कोई तुलना नहीं थी सुरेश और शेखर में!

'मुझे तो कोई पुरस्कार नहीं मिला, सर!' बात यद्यपि सुरेश ने प्रो० श्रीवास्तव से कही थी पर शीला के दिल में गुदगुदी जग आयी थी। उस दिन लड़कियों के कामनरूम का वार्षिकोत्सव था। शीला ने संगीत और नृत्य प्रतियोगिताओं में खुलकर भाग लिया था और हर प्रतियोगिता में उसे प्रथम पुरस्कार मिला था। रात के नौ बजे तक यह उत्सव चला था और इसकी समाप्ति के बाद सभी कलाकार प्रो० श्रीवास्तव के साथ खड़े रहे थे। 'बेवकूफ' शीला ने मन-ही मन कहा था 'तुम्हें तो सबसे बड़ा पुरस्कार मिला है' और अपना निचला होठ काट लिया था।

'तुम शीला को घर छोड़ आओ। रात के समय अकेले जाना ठीक नहीं।" प्रो० श्रीवास्तव ने सुरेश को आदेश दिया था। कालिज की

कम्पाउण्ड यहा खत्म हो रहा था और वे स्टेशन रोड के मुहाने पर आ गये थे।

"एक नहीं, एक रिक्शा रोक लो।" बायीं ओर के मोड़ पर सुरेश मुड़ने को हुआ था, तो प्रा० श्रीवास्तव बोले थे और एक विचित्र अनुभूति से शीला के मन प्राण सिहर गये थे। सुरेश के साथ ! एक रिक्शे पर ! वह भी रात्रि के माहौल में ! नहीं, उसके इतना समीप वह आज तक नहीं आयी थी। हे भगवान् भाग्य चक्र कितनी तेजी से घूम रहा है, उसने सोचा था।

पर उस दिन कुछ नहीं हुआ। अगर सचमुच उस दिन कुछ हो गया होता तो आज वह न होता जो हो रहा था। शीला का मन उद्विग्न हो गया। उसकी नाव धारा की तरफ बढ़ती रामनगर के किले तक पहुंच चुकी थी। उसने नाविक को पीछे चलने को कहा और फिर अतीत के खण्डहरों में भटक गयी।

सुरेश एक और रिक्शा रोक चुका था और प्रा० श्रीवास्तव से बोला था 'मैं दूसरे रिक्शे पर बैठ जाता हूं। मिस शीला को इनके घर छोड़ते हुए चला जाऊंगा।' अनाड़ी ! शीला के मुंह से निकला था और उसका दिल बैठ गया था। इतना परहेज, इतनी दूरी ! और फिर वह बिना कुछ बोले अपने रिक्शे पर बैठ गयी थी।

रात्रि की नीरवता में सिविल लाइन्स की सड़कों पर दो रिक्शे दौड़ जा रहे थे। सड़क के दोनों किनारों पर खड़े छायादार वृक्षों से छन छनकर आती हुई चांदनी वातावरण को अत्यन्त मोहक बना रही थी, पर रिक्शे थे कि खामोश भागे जा रहे थे। पता नहीं ऐसे में सुरेश के मन में कुछ उठ रहा था पर उसे लग रहा था, कोई उसके कलेजे से मांस के लोथड़े पर लोथड़े काटे जा रहा है। काश, इस समय सुरेश इसी रिक्शे पर होता !

और दूसरे दिन शीला ने उसके साथ यह बात चलायी तो वह दार्शनिक और आदर्शवादी बन गया था, 'तुम आखिर क्या चाहती थी कि मैं तुम्हारे रिक्शे पर जाता ? रात्रि का समय रोमांटिक वातावरण और दो युवा प्रेमी। मान लो, कुछ उचित-अनुचित हो जाता तो ?

तो तुम्हारा सिर, उसका मन सहलाया था। यह भी प्यार करने का कोई ढंग है? आखिर कब तक चलती यह दूरी! पर कौन समझाता सुरेश को। वह तो अपना आदर्शवाद ले बैठा था, "मेरी अपनी कुछ मान्यताएं हैं शीला! मेरे खयाल से मनुष्य जिससे प्यार करता है उसकी वह पूजा करता है, और पूजा किसी पवित्र और विशुद्ध चीज की ही होती है और अपने प्रिय-पात्र को अपने ही हाथों भ्रष्ट कर कोई अपने प्यार की अपने ही हाथों हत्या करने की बात नहीं सोच सकता।" क्या कह गया था सुरेश? कैसी बात! वह आज तक इसकी समझ में नहीं आयी और उस दिन उस शान्त एकान्त स्थल में वह बरबस फफक पड़ी थी, 'तो क्या तुम कभी भी मुझे हाथ नहीं लगाना चाहते? यह कैसा प्यार है? ... ' पर फिर भी वह चट्टान ही बना रहा था 'मुझे गलत न समझो शीला! मैं तो केवल इतना ही जानता हूं कि जब तक तुम मेरी पत्नी नहीं बन जाती, तुम मेरी बहन हो।' सुरेश ने अपना निर्णय सुना दिया था और शीला ने अपना सिर पीट लिया था।

पवित्रता, विशुद्धता, आदर्श। औरत के लिए ये शब्द कोई अर्थ नहीं रखते। काश सुरेश अपने आदर्शों की काल्पनिक ऊंचाइयों में ही नहीं भटकता रहता और यह जान पाता कि एक अबला नारी के लिए जो हमेशा असुरक्षा और अनिश्चितता का शिकार रहती है आदर्श और विशुद्ध बने रहना मात्र कल्पना की बातें हैं। पुरुष आसानी से आदर्शवाद का जामा पहन सकता है, आदर्श रह भी सकता है। पर जिस पर चौबीसों घण्टे लोलुप और पिपासु नेत्र अवसर की प्रतीक्षा में गड़े रहते हैं वह नारी कब तक अपने आदर्श की रक्षा कर सकता है! कब कौन किधर से कितना लाभ उठायेगा यह वह नहीं जानती और तब चारों ओर से भ्रष्ट और प्रवंचकों से घिरी वह कब तक आदर्श की दुहाई देते योग्य रह सकती है? शीला का मन उचटा था उसी दिन पहले पहल सुरेश की तरफ से और उसने सुरेश के प्यार की निर्मल स्वच्छ चादर में संशय और अविश्वास के धब्बे जड़ दिए थे—कहीं वह किसी दूसरे से तो ... ?

छिः कैसा घृणित विचार पाला था उसने सुरेश के प्रति, और

कितना तूल दे दिया था शेखर ने उसको ! आज भी शीला का मन अपनी मूखता और शेखर की नीचता की बात सोच सोच कैसा-कैसा तो हो आता है।

मैं कहता हूं सुरेश की वाणी में प्यार है और तुम हो कि उसे देवता मान पूज जा रही हो।" शेखर जो आरम्भ में ही उस पर छाने का प्रयत्न कर रहा था और जिसे वह सदा ही दूर रखती आयी थी, एक दिन अवसर पाकर बोल पड़ा था। जवाब वह क्या देती, पर अपने संशय की सम्पुष्टि होने देख उसकी दोनों आंखें भर आयी थीं और ऐसे अवसरों पर कभी न चूकने वाले शेखर ने उसकी दोनों हथेलियों को अपने हाथों में बांध शायद बहुत दिनों से जीभ पर चढ़ी बात उतार ही दी थी "अगर तुम कभी मेरी आंखों में भी वह बात ढूंढने का प्रयत्न करतीं जिसे तुम सुरेश की आंखों में ढूंढने का निरर्थक प्रयास करती आ रही हो तो न तो मैं इस अनावश्यक भटकाव का शिकार होता और न तुम एक अनिश्चय की स्थिति में पड़ी रहतीं।' और फिर वह इस भय से ग्रसित हो कि कहीं शेखर भी अपने भटकाव का शिकार हो किसी अन्य किनारे न लग जाये उसे आगे बढ़ने को प्रोत्साहित करने लगी थी और सुरेश की तरफ से उसका मन हटने लगा था। काश, सुरेश को शीला के मन के पाप का पता लग गया होता और वह समय रहते सजग हो गया होता, तो आज न तो वह टूटता न शीला ही इस द्वन्द्व का शिकार हो अव्यवस्थित और असन्तुलित होती।

सुरेश की आंखें खुली थीं और उस समय खुली थीं जब शीला की आंखें सदा के लिए बदल गयी थीं। शेखर यद्यपि अपना ग्रेजुएशन नहीं कर सका था और शीला एम० ए० करने जा रही थी, पर शीला पर शेखर का वह भूत सवार हो गया था जो उतरने को नहीं था। कई बार शीला ने शेखर के बढ़ते हाथ रोकने चाहे थे पर अंत में वह सफल हो गया था और शीला असफल। शायद उसका विरोध ही लगड़ा नहीं रहा।

कितना अंतर था शेखर और सुरेश के तर्कों में ! दोनों जैसे दो ध्रुवों से बोल रहे थे। उस दिन जब उसने शेखर को हद से ज्यादा बढ़ने से मना किया था, तो वह बोल पड़ा था 'मैं नहीं समझ पाता शीला, कि तुमने प्यार में संयम की बात कहां से सीख ली। शायद सुरेश का थोथा दर्शन

तुम पर भी हावी हो चुका है। आदर्श और व्यवहार में आसमान-जमीन का अन्तर है शीला, और जब हमारे पाँव धरती पर हों तो आशा को आसमान में टिकाकर चलना कोई बुद्धिमानी नहीं है।"

शीला पर शेखर का तर्क क्या चलता पर वास्तविकता यह थी कि संयम और आदर्श पर आधारित सुरेश के प्यार ने पुरुष के सामीप्य के लिए उसके अन्दर एक भयंकर भूख भर दी थी। इसीलिए उस दिन ड्राइंग रूम में जब शेखर उसके हाथों में सुरेश की पुस्तक देख अपनी पुरानी हीन भावना का शिकार हो गया था तो वह खीझकर बोली थी 'तो शेखर अगर तुम यह सोचते हो कि मैं अब भी सुरेश को नहीं भूल रही हूँ तो ऐसा करने के लिए तुम स्वतन्त्र हो। अब जब तुम्हारे अन्दर कोई ऐसी ग्रंथि उत्पन्न हो गयी है जिसके फलस्वरूप तुम अपनी चीज़ को भी परायी समझने पर बाध्य हो, तो यह चाहे तो मेरा चाहे तुम्हारा दुर्भाग्य ही है।

शायद अंतिम वाक्य शीला को नहीं कहना था। स्वाभाविक था कि शेखर ने इसका कोई और अर्थ ले लिया। शीला शेखर को कोई प्रोत्साहन देना नहीं चाह रही थी, पर जो बात निकल चुकी थी वह वापस होने से रही। शेखर के चेहरे पर एक चमक आयी थी और वह छूटते ही बोल पड़ा था 'बात तो तुम बड़ी अच्छी कह गयी शीला, पर मेरी समझ में नहीं आता कि मेरे पास अपनी वस्तु को अपनी समझने का ठोस प्रमाण भी क्या है?' कैसी छिछली और थोथी बात थी! शीला को हँसी आ गई थी।

कौन सा प्रमाण चाहते हो शेखर? क्या यही प्रमाण पर्याप्त नहीं है कि मैं सभी से सारे सम्बन्ध तोड़कर केवल तुम्हारी रह गयी हूँ? अगर तुमने संशय और अनिश्चय की स्थिति में ही बने रहने की कसम खा ली है तो बात और है, नहीं तो तुम जानते हो कि मेरा जितना तुमसे निकट का सम्बन्ध है उतना किसी से नहीं रहा।' वह कुछ खीझकर बोली थी और शेखर जो अब तक अलग बैठा था, शीला के ही सोफा सीम पर आ गया था और उसकी दाहिनी हथेली को अपने हाथ में लेकर बोला था, 'तुम मुझे गलत समझ गयी शीला! मेरा मतलब यह नहीं था कि मैं

तुम्हारे प्यार पर अविश्वास करूँ अथवा उसे संदिग्ध दृष्टि से देखूँ। मैं तो केवल अपने और तुम्हारे मध्य की बची-खुची दूरी भी, समाप्त करना चाहता हूँ। अगर ऐसा न होगा तो मुझे भय है कि मेरे और तुम्हारे सम्बन्धों की भी वही हालत होगी जो सुरेश और तुम्हारे सम्बन्धों की हुई। नहीं मैं इस सम्बन्ध में कोई रिस्क नहीं लेना चाहता।" और शेखर के हाथ का दबाव कुछ बढ़ गया था।

यही थी वह घड़ी जिसमें शीला के प्रतिवाद की शक्ति ही समाप्त हो गयी थी। वैसे उसे भी यह लग गया था कि अब इस सम्बन्ध में कोई रिस्क लेना सचमुच ठीक नहीं था और जो कुछ हो रहा था वही ठीक था। पता नहीं वह कैसा उन्मादक क्षण था जिसमें उसने आसू भीगे शब्दों में कह दिया था "ठीक है शेखर यदि तुम इसी तरह हमारे सम्बन्ध पर गांठ देना चाहते हो, तो मुझे कोई एतराज नहीं, पर इतना समझ लो औरत इस प्रकार जिसकी एक बार हो जाती है वह जिन्दगी भर के लिए   और इसके बाद उसके मुंह से और शब्द नहीं निकल सके थे।

"नहीं सुरेश नहीं, अब मैं तुम पर झूठ आंच नहीं चढ़ा सकती।" राजघाट पर अपनी नाव से उतरती शीला के अन्तर में ज्वालामुखी सा फिर एक बार विस्फोट हुआ था तुम मेरे प्यार के पहले और अन्तिम अधिकारी थे और मैं तुमको अपनी छाया से नष्ट नहीं करना चाहती। नहीं मुझे शेखर से प्यार नहीं पर कुछ है ऐसा जो मुझे उससे अलग नहीं होने देता। काश, तुम औरत की बेबसी समझ पाते! खैर मुझे अफसोस केवल इतना है कि तुमने जिसे देवी मानकर पूजना चाहा था वह अब एक ऐसी पतिता है जिस पर तुम थूकना भी नहीं चाहोगे। मैं जानती हूँ सुरेश, कि तुम महान हो और अगर मैं ऐसे सैकड़ों पाप करके भी तुम्हारे समक्ष जाऊं, तो तुम मुझे माफ कर दोगे और ऐसा ही तुमने अपने पत्र में लिखा भी था—'मैं जानता हूँ, शीला, कि तुम शेखर के साथ बहुत आगे बढ़ गयी हो और शायद अब तक सभी सीमाओं का उल्लंघन भी कर चुकी हो फिर भी मैं तुम्हें एक और मौका देता हूँ। अगर अब भी तुम मेरे पत्र का स्वीकारात्मक उत्तर दो तो मैं सब कुछ

भूलकर तुम्हें अपनाने को तयार हू ।"

'हा, मैं जानती हू कि नीलकण्ठ बनकर तुम सारा हलाहल पी जाओगे। पर मेरा भी तो कुछ कर्तव्य है ? मैं यह कैसे बर्दाश्त कर सकती हू कि मेरी प्रेरणा का एकमात्र आधार, मेरे सपनों का एकमात्र साथी और मेरी आराधना का एकमात्र अधिकारी मेरे ही हाथों कलुषित स्पर्श पा मेरी ही आखों मे गिर जाए। तुमको अभी अभी डाल पत्र मे मैंने यह अवश्य लिख दिया है कि मेरा तुमसे कोई सम्बन्ध नही और न नहीं चाहती कि भविष्य में तुम मुझे कोई पत्र लिखो और इसके बाद मैंने अपने को यह भी समझाना चाहा था कि तुम्हारे लिए मेरे अन्दर अब कहीं कुछ नहीं पसीजता, पर यह सब झूठ है। सुरेश, सब झूठ है। यदि सच है तो केवल इतना कि शरीर मेरा चाहे जिसका हो पर मन जो मेरा एक बार तुम्हारा हुआ, वह अब और किसी का होने से रहा। और हाँ, सुरेश तुम्हारे आदर्शों की जिस ऊचाई को मैं अपनी दृष्टि सीमा मे नहीं बाध सकी, आशा है तुम मेरे लिए उससे नीचे गिरने का प्रयत्न न कराग ।'

गंगा का पानी छल छलकर बह रहा था। शीला की नाव तट से लग चुकी थी, पर उसके मन मे हो रहा था, शायद वह किसी गलत घाट पर आ लगी है।

काच कुआर

चौराहे के पूरब से जो सड़क निकलती है वह कुछ दूर जाकर शहर के उस भाग में समाप्त हो जाती है, जहा भंगियो की घनी बस्ती है। घर-मकान के नाम पर तो वहा और कुछ नहीं सिर्फ टूटी फूटी झोपडिया ही है पर कोलाहल और चीख पुकार तो इस बस्ती में खूब जोर है। शाम के समय तो यहा का शोरगुल आसमान छूने लगता है क्योंकि बस्ती के तमाम भंगी इसी समय अपने अपने कामो से लौटते हैं और रास्ते में पड़ने वाले ताड़ीखाना और शराब की दूकानो पर अपनी दिन भर की कमाई के साथ साथ अपने दिमाग को भी गिरवी रख घर लौटते ही अपनी पत्नियो से महाभारत छेड़ देते है।

बस्ती के बीचोबीच पीपल का एक पुराना पेड है, उसकी डालियां जहा तक फैलती है वहा तक की झोपडियो के ऊपर कभी जो छप्पर रहे होंगे, वे अब नहीं रहे क्योंकि बरसात की बूदो और गर्मी की तीखी किरणो को पीपल अपने घने पत्तो में ठीक उसी तरह छिपा लेता है, जिस तरह कोई शर्मीला प्रेमी अपनी सारी भावनाओ को अन्दर ही पी जाता है। इन्ही झोपड़ियो के ठीक बीचोबीच की झोपडी रामटहलुआ की है। रामटहलुआ आज अपनी आदत के विपरीत झोपड़ी के दरवाजे पर चुप बैठा है। शाम की दीया-बत्ती हो गयी है और अगल बगल का कोलाहल हर रोज की तरह धीरे धीरे जोर पकड़ता जा रहा है। रामटहलुआ के मन में शाम के धुए की तरह ही विचार के बादल उमड घुमड रहे है।

नही अब वह नही मारेगा। डाट डपट भी नही करेगा। बेकार है सब। दुखिया को मारने-पीटने से कोई फायदा नही। कितना तो पिआर करता है एक उस डाक-बगले का वह गोरा साहब अपनी बीवी को। और एक वह है जो दुखिया का जीना हराम किए रहता है।

गारा साहब अपनी बीबी स मीठी मीठी बातें कर सकता है, हाथ म हाथ डाल कर घूम सकता है खाते खात अपन हाथ का कौर उसके मुह म डन सकता है, ता वह भी एसा क्या नहीं कर सकता ? 'पशताप हा रगा ह रामटहलुआ का बहुत बहुत पशताप । पाक बगल म डिउटी है उसकी आठ दिना स । कितना ता बईमान है जमादार भी । डाक-बगल म उसकी 'डिउटी काटता ही नहीं । जब जब उसक बटे न खाट पकडी है तब जाकर रामटहलुआ की पारी आयी है । पसा तो पानी की तरह बहाता है डाक बगले का साहब लोग । बाजार से लौटने पर आठ आन रुपय का हा काई हिसाब ही नही लेता । जुग जुग जिय' यह गारा साहब । आज हा आया ह आर आज ही स छा गया है वह रामटहलुआ पर । कसा मीठा बालता है, जस रामटहलुआ काई डोम भगी न हाकर किसी बड बाबू का बडा बेटा हा । है ता हिंदुस्तानी साहब ही, पर गारा गारा कसा ह, भक भक जसे अगहन की इजोरिया उगी हा । उसका मन जैसे गोरा साहब छाड कर और कुछ कहन का करता ही नहीं ।

दुखिया रे ' वह अनजान ही आगन की तरफ मुडकर आवाज दता है, पर दुखिया हा तब ता बोल ।

नहीं आयी अब भी नहीं आयी । अगल बगल की सभी डामिन खसिन आ गयी । चाद लाठी भर ऊपर चढ आया, पर अभी तक उसका काइ पता नहीं । रामटहलुआ सामने की गली मे दूर तक आखें दौडाता है । चादनी म बहुत सी काली-काली आकृतियां आती जाती नजर आता ह पर दुखिया इसम नहीं ह । वह ता उसकी चाल स ही पहचान लता है । रोज दर करती है दुखिया और इसीलिए राज ही पीटता है वह उस ।

इधर कोई दो साल स यह लत लगी ह दुखिया का नहीं तो शादी के बाद पाच छ साल तक ता आराम से रहे थे व । कसे दिन थे व और कसी थी वे रातें । पाच छ साल जसे पख लगाकर उड गय । दुखिया क जैस 'परान ही बस गय थे रामटहलुआ म । एक छिन के लिए भी अलग कहा हाती थी वह ? लडकपन मे अपनी मा से कहानी सुना करता था वह, सात समुन्दर पार की परी और राजकुमार की । एक 'राक्सस

बडा कर उठ जाते थ और वह भी अपन बिछावन से राम राम कहते बाल पडता था। फिर पडित वटुकधारी मिसिर के ढेर सारे ढार हाक कर 'काव के किनार चल दता था। कहा मिलती है ऐसी नदी भी शहर मे? कितना ता पानी है इस 'गागी म? कभी नहा नही पाया डर क मारे वह यहा नदी तालाब म। 'काव म तो कमर से ज्यादा पानी कभी बढा नही। ढोरा को किनार कर वह दिन भर नदी म छपाक छपाक करता रहता। घुघुलिया जगिया, मोवना टेंगरिया, सब साथ साथ नदी म पडे रहते। 'बारह' साल का था वह उन दिनो, पर अब सब सपना हो गया। न नही आना था शहर उम। सब गाल गप्पा हो गया। न शहर आता और न सासत' म पडता रामटहलुआ।

दुखिया आयी और चली गयी झापडी क भीतर जैसे उसक लिए राम टहलुआ का कोई 'अमथान' ही नही। कैसी गमक रही है! ताडी चढाये आयी है। इ बुलाकी का बेटा एक ही बदजात है। गह पर ही दुकान खडी कर बठ गया है। सब पैसा रास्ते म गाड लता है। पर अब न पीयगा रामटहलुआ। सारा का सारा पैसा आज उसन पाकेट म है! वह पीना ह बगन का गारा साहब? कल सुबह जो गया था कमरे म झाड देने तो गमक लग गयी गार साहब का। बाला, 'पीता है रे?'

'ना मालिक अपन पास कहा स जतो रूपया पैसा कि' झट स एक झूठ चढ आया था रामटहलुआ की जीभ पर। यही हाता है डाम भंगियो क साथ का परिणाम। पर गारा साहब सब समझ गया था।

बोला पीकर आयगा ता यहा काम बद, समझा।' 'हा' समझ गया था वह और 'असनान घर म घुसत ही हाथ क झाडू को किनार फेंक दानों हाथा स कान पकडकर 'किरिया' खाया था। इतना अच्छा साहब बोलता है ता नही ही पीयगा वह। और फिर न पीन म फायदा भी कितना था। सब पयसा बच जाता है, पर यह दुखिया भी समय जानी ता क्या कहना था? चलो इसको कल गोरी मेमसाहब से ही भेंट करा दें। सगत का फल होता है। कही गारी मेम साहब की छाया पड गयी तो दुखिया भी फिर दमयन्ती बन जायगी। ना, कान उमेठता है रामटहलुआ। यह नाम नही लेना है उस। बाप रे कहीं पुलिस-बुलिस मे कान म पड

सोन की चिड़िया बड़ी महंगी पड़ेगी तुझे। पर छोड़ा इसने उसे? पर यह भी क्या कुछ कम सती सावित्री निकली? रामटहलुआ से ता मनी हो रही। कितने सवा न डोरा डालना चाहा पर सबको दुलत्ती झाड़ दी—दमयं० नहीं नहीं, दुखिया ने। दरअसल सब दोष उसी का है। ना, शहर ही नहीं आना था उसे।

कल यह ले जायगा इसे गोरा साहब के पास और कहेगा इसको भी यहीं शिवछा दो माव कि यह भी पीन-स्थान पर थूक दे। अगर सुधर गयी दुखिया तो फिर क्या उसके दाना के लाल पड़ेंगे तब तो छत का खाबेंगे दोनों और पसर कर सोयेंगे।

'दुखिया रे !'

'क्या बकते हो? भीतर आकर कहो न। ड्योढ़ी पर बैठे किस पर डोरा डालने के चक्कर में हो?''

लो न, अब यह हुआ ! अब डोरा डालता है वह—इस बुढ़ापे में? अरे डोरा डालना तो इसका काम, इसके खानदान का काम। इसी ने मुझ पर डोरा डाला कि नहीं? पंडित बटुकधारी मिसिर ठीक ही कहते थे न घोर कलियुग आ गया है। जिसके लिए चोरी करे, वही कहे चोर! पर ना, नहीं बोलेगा वह, कुछ भी।

कान उमेठकर परतिज्ञा जो कर चुका है। अब चाहे जो हो जाय, वह दुखिया पर हाथ तो नहीं ही उठायेगा, मुंह भी नहीं खोलेगा। बोल ले यह जितना बोलना हो। जब गोरा साहब और उसकी मेम की दवा कर आयगी तब आंख खुल जायगी फटाक से।

अब बोलता क्यों नहीं है रे छबड़ का पूत। जब में आयी हूं, तब से टर टर कर रहा है— दुखिया रे' 'दुखिया रे,' अब कंठ में घाव।'

अब लो सिधाई का यह नतीजा है। 'टर टर करने लगा वह? मेढइया बैंगन हो गया वह काव के कछार का? दो ही बार पुकारा है कि नहीं और कहती है जब से आयी हूं तब से। और कंठ में घाव हो जायेगा तो खायेगी किसकी कमायी? ना यह चन्नन का नहीं है। बटुकधारी मिसिर के कंठ से बाबा तुलसीदास ठीक ही उचरे' थे 'ढोल गवार, शूद्र, पशु नारी ये सब ताड़न के अधिकारी।' अब कम रहे 'परतिज्ञा?

भला यह सब भी 'बरदास्त' की बात है। काव म बुढिया बाढ आन पर किनार का बूढा बैर का पेड उखड गया था कि नही 'जर मूल से ? अब अगर उसकी परतिज्ञा टूट जाय और हाथ छाड पडे वह दुखिया पर - तब ? तब पसर जायगी कि नही वह कडा जोत पडित की काइली गाय की तरह ! पर ना, नही छोडेगा वह हाथ। 'मरद की बात एक होती है। बाल ले चाहे जितना बालना हो दुखिया को। कान म उगली डाल लेता है रामटहलुआ। न विप कान मे पडेगा न जहर चढेगा।

'आज भी पिया है रे !'

"नहा मालिक अपन ता काल्ह ही तोवा कर दिया पीन खाने पर। अब रही दुखिया, अगर उमको भी कुछ 'शिक्छा, उक्छा' होय जात मम साहब के 'दुआरा' ता अपन सब के 'जिन्दगी' सुकारथ' होजात ।"

कहा है दुखिया ?"

ऊका बाहर खडी है मालिक, गट के बाहर। सरम कर है बडे घर की वेटी जा ।"

बडे घर की वेटी ! क्या मतलव ?'

अब लो कैसी बात निकल गयी उसक मुह म। यही कहन ह न जाभ का काई भरोसा नहीं। कब कौन बात चढ जाय कौन जान ? अब क्या जवाब द वह गारा साहब का ? इमी का बालत ह न अपन पाव म आप कुल्हारी मारना।

यह ता खासी गारी चिटटी है र ! कहीं दाल म काला लगता !

अब काला लग चाहे उजला। अब ता गया रामटहलुआ काम म। इम हरामजादी का भी कुल्ह मटकात गट' के भीतर घुस ही आना था। 'नदनर खराब हान पर यही हाता ह। अब पकडी गयी कि नहा चारी ? बटा का आज पनी हाती है। भीतर की बात पढ लेती है। अब गारा साहब सब समझ जायगा। क्या पडा था शिक्छा उक्छा' का ? जा भी थे अच्छा थ व। पीना-खाना छाटा का काम। बडे की नकल करन स चला

है काम कहीं छाटो का ? ना, अब नहीं बचेगा यह। ठीक ही कहना थी गाव की छोटकी आजी—बडो के अगाडी और घाड़े के पछाडा ना जाइयो। सा ला अब भुगता बटा रामटहलुआ। पड़ो हाथ म हथकड़ी और हुआ मेहमान सरकारी घर को।

'रत्नी, ए रत्नी, जरा बाहर आ ता देख तो रामटहलुआ की बीवी तो तुम से भी ।'

अब न बना ता अब बना। अब दाना साहब-बीवी मिलकर उसकी मारी पलीद करने पर पिल है। ना आ ही गयी गारी साहिबा। ठीक ही कहा गार साहब ने। कहा है दुखिया गारी साहिबा स जरा भी कम साफ? भक भक तो है यह भी। 'हरामजादी' मात साल तक भगिन रही तब भी लाटसाहबी खून नहीं उतरा। कैसा गौर से देख रही है गारी साहिबा दुखिया का जमे इन्ही की सगी बहन हा। बडा का विश्वास कभी नहीं करना चाहिए। कब आखें उल्टेंग पता नहीं। कल कम घुल घुलकर बातें कर रह थ—दाना उसस। आज सी०आई०डी० बन गय हैं। अरे, हागा दाल म काला तो हागा, क्या पडा है तुम्हे दाल भात म मूसलचन्द बनने का? जब सात साल तक कोइ माई का लाल नहा लगा सका पता तो अब चले ह य—गडे मुर्दे उखाडने।

कौन हाता है यह तुम्हारा ?' गारी साहिबा पूछ रही है। भला हुई यह काई बात ? अरे काइ उन्ही से पूछे कि कौन होता है यह गोरा साहब तुम्हारा जो मुह म पाईप लगाए विहटा के चीनी मिल की तरह फक फक धुआ फेंक जा रहा है ? जो वह इसका है वही वह दुखिया का है। आर अगर कही दुखिया ही भडा फोड दे तब ? कितना ता पीटता है वह इसका। अगर कही न लिया बदला इसने तो ? कितनी बार तो कही है कि अब जा हाथ उठाय ता दौड जाऊगी पुलिस म और रख दूगी तुम्हारा कच्चा चिट्ठा। भला उसका चिट्ठा उसका भी कच्चा चिट्ठा है कि नही ? पर ना आरता का कही कुछ हाता है ? सब दाष ता मरदा के मत्थे आ जाता है। खर जा भगवान करगा सो हागा। मार द, बच्चा है—रामटहलुआ। दे द दगा यदि दना हा है दुहाइया वा सात साल के बाद। पर अगर कही गोरा साहब भी पुलिस

हुआ तब ? कौन जाने पुलिस वाले कितने 'भेस' में रहते हैं ? एक बार एक साधु आया था गाँव में तो लालजी बाबा कहते लगे थे कि सी० आइ० डी० है। वही गोरा साहब भी रंगा सियार निकला तब ? तब, जो होना होगा सो होगा। क्या करे रामटहलुआ काँप तो रहा है डोमन साहु के दरवाजे पर के पीपर के पेड़ के पत्ते की तरह। पर यह चुप काहे को है ? एक ही धुआ धाख है। और कुछ तो मुँह खोलना है। ऐसे ही सह रहना है कि नहीं ? अरे जो कहना है वही कहे न। काट भी दे सात साल की प्रीत की डोरी। मासत में 'परान' तो 'अटका नहीं रहेगा —रामटहलुआ का। कहाँ फँस गया वह ? किस नछतर में 'डिवटी' काटा था जमादार ने उसका डाक बंगले में।

'यह तो बोलती ही नहीं। लगता है डरती है।

मैं कहता हूँ यह भगाई हुई है, रामटहलुआ ने ।"

कौन कहता है भगाई हुई है ? भगाई हुई है तुम्हारी 'जोरू' तुम्हारी हाँ। अब जो एमी फूहर बात निकाली तो खींच लूँगी जबान राख लगाकर क्या समझ रखा है तू जोरू का गुलाम। साहब होगा अपने घर का। एक एक मूँछ उखाड़ लूँगी, हाँ। बड़ा आया—भगाई बताने। असल डोमिन की जात हुई तो रख दूँगी चुनकर एक एक ।'

अब तो चुप रही तो चुप और बोली तो जैसे फूटा एटमबम। पक्की खसिन हो गयी दुखिया सात साल में। ऐसी लताड़ झाड़ी कि घुस गए साहब और मेम बंगले में। भला किसकी इज्जत भारी है कि मुँह लगाए भंगिन—खमिन का ? पर निकली एक ही पानीदार— दुखिया आखिर है तो खून खानदानी। देवी है दुखिया देवी। सब सब हालत हो गयी उसकी उसी के चलते। पर आज तक वह न झुकी 'आन' से सो न चुकी। 'प्रीत' निभाना तो कोई औरत से सीखे। अगर औरत ने दिल से चाह दिया किसी को तो बस हो गयी वह, उसकी सदा के लिए।

'अब चलता काहे नहीं है रे, रंडी का पूत। शिवछा दिलाने आया है। अरे ले डूबेगा तुम खुद को और मुझे भी किसी दिन। [illegible] थी सो तो मिल गयी मुझको। अब तो हो गये हम डोम भंगी। अब नम और क्या क्या ? गंगा नहाने से कहीं गधा घोड़ा बनता है। अब।

देश वैसा भेस। डोम भगी की 'जात' होकर ताडी-दारू नही पियेंगे तो क्या चदन लगायेंगे? खबरदार जो अब कभी साहब मेम के चक्कर म पडा। मुआ जानता नही, ये सब घाट घाट के पानी पिये होते हैं। देंगे हाथ म हथकडी और चलाता रह जायगा चक्की बडे घर म। मत क्या? मैं तो औरत की 'जात हू' बातें दूगी सब पता' इसी का है। यहा भगा ले गया मुझ मेरे घर से। लाख बार समझाया सोच-समझकर चल। पर काहे को रेंगने जाय उसके कान पर जू। कभी 'फना' साहब कभी 'फना' मेम कभी फना' साधु तो कभी 'फना' फकीर। मेरी बुद्धि तो ग कराने पर पडा है! अरे मेरी बुद्धि तो बिगड ही चुकी, नहीं तो तुम्हारे सबसे खबसूरत! अब जो अपने शरीर पर थोडा खटकर कुछ पैसा जोडने पर पडी हू आगे दिन के लिए तो पाप भरने लगा इसके मन म। अरे, मर्द की जात ही होती है ऐसी। कभी विश्वास किया है तूने औरतो पर ?

अब लो छुटी गाडी तो छुटी। औरत की जीभ नहीं हुई जसे 'कालिका मेल' हो गयी। जब यही था तो पहले ही न कहना था—उसे क्या पता' रुपया काटता है? पर उसे तो लगा, सब रख आती है उस कलमुहे शराबी की दुकान पर। अब तुम शौक से आओ आधी रात को। 'अपने क्या? दरवाजे पर बठकर रामधुन गायेंगे। कितना अच्छा गाते थे गुरु बाबा, मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरा न कोई अब तो भेद खुल गई जान गये सब कोई। मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरो ।'

चलो इस बहाने ही कुछ पाप कटे। यह न जाने किस जनम को प्राश्चित' है कि हो गये ग्वाला से भगी। लाख बार मना किया था मा ने, शहर न जाव बेटा। घर पर ही गाय भैस चराओ, 'हर फार' करो। पर, ऐसा सबजबाग दिखाया उस राम मोहन ने बेटे न कि चढ गये बेटा राम टहलुआ पत्ते पर। बोला, शहर ऐसा होता है वैसा होता है, रेलगाडी चलती है भक भक, हवा गाडी दौडती है रात को आखें चौंधिया जाती है, बिजली की रोशनी मे। बिजली की भी खूब याद आयी। यह भी 'हराम मजादी' एक ही बला है। अब उस दिन जो भागकर आये राम मोहन के साथ शहर तो सुना दिया उसने अपनी तग कोठरी म और चला गया रात 'डिवटी' पर। जाते तो शौक से जाते पर बुझाकर जाते उस भग जागीन

को। साली माथे पर लटकती रही भुक भुक। अब ता लाख सिर मारे रामटहलुआ बुझने का नाम ही न ले वह फुक फुकी। घर का 'दीया' नहीं बुझाया था रामटहलुआ ने? 'मिट्टी' का 'दीया' हुआ तो एक फूक दिया बस धुआ उगल कर साफ। लालटेन और चिमनी हुई पडित बटुक-धारी मिसिर की तरह तो ऐंठा नीचे का पेंच और काम तमाम। पर, इस बिजली की बटी पर ता एक 'अक्ल' न चली उसकी। फूक मारते-मारते माला गला म हो गया दरद पर उसका बाल बाका नहीं। लाख चाग हिलाया, पेंच-पाच खोला, पर बुझने स रही वह बिजली की बच्ची। अब भला कोई क्या साय जब सिर पर लटक रहा हो 'अजोर का गोला? सा दे दिया पूरी बाल्टी का पानी उस पर। लो साले अब न बुझे ता अब बुना भला टिक सकती है आग पानी के सामने। पर बाप रे वह तो जस का तस और समा गया उसके मन म डर। जरूर कोई भूत पिचाश का फेरा है नहीं ता एक छाटा दीया' और एक बाल्टी पानी म न बुझे। सो भाग आया रामटहलुआ दरवाज के बाहर और किवाड बद कर सुबह तक जपता रहा हनुमान चालिसा 'भूत पिशाच निकट नहीं आवे, महावीर जब नाम सुनावे नास रोग हरे सब ।

अरे चलता क्या नही तेजी स? किस ध्यान म लगा है? पैर म महावर लगी है?

अब ला लग गयी उसके पर म महावर? हो गया न वह आरत? अब क्या वह बन जाय भिखना के इक्के का टट्टू। चल ता रहा है। साला यह डाक बगला भी ता शहर स दो मील पर बना है और फिर शहर के उस पार हमारी बस्ती। अभी ता उस कठहिया पुल पर जाने पर दिखाया पडगा बचाग पीपर का पेड और फिर वहा स पक्का मील भर। जानता कि इसकी गोराइ यह रग लायगी यहा तो उस क्या कुत्ता काटे कि इस लग्गर जाना गोरे साहब और गोरी साहिबा के पास? और ध्यान न लगाय ता क्या करे? बना दे फटाफट मशान अपनी जीभ का उसी की तरह? तब छिड जायगा महाभारत कि नहीं? क्या बिगडा था राम मोहन उस दिन डिवटी स लौटने पर?

बोला, सत्यानाश कर दिया तूने मरे बिछावन और बेटी बचवा की

पोथी का। कल ही खरीद कर लाया था पूरे पाँच आने म और डाल
दिया पूरी बाल्टी का पानी उस पर।" अब डाल दिया तो डाल दिया और
यहा जाडे म पूरी हड्डी पसली जम गयी सो ! यही था तो बुला कर
जान अपनी भगजागनी का। वह तो था ही गाव गवई का गवार। उसे
क्या पता कि दीया' लटकता है छत स और पेच होती है दीवार पर।

सो न सहा है रामटहलुआ न किसी की शान और न यहा उस दिन और
निकल पडा नौकरी की खोज म। भला रहा है कोइ बिना पढा लिखा
शहर म बेकार ! जिसके दरवाजे पर पहुचता वही जसे स्वागत के लिए
तैयार था। दो दिन रहा १५ रुपय महीने पर। उस बेचारे 'प्रोफसर' के
यहा। क्या नाम था भला सा मिरनाल' और बढ गयी टाक तीसरे दिन—
बीस रुपया तथा कपडा और खाना पर पकड ले गया दमयन्ती
न न दुखिया का बाप। दूसरे के हक पर धावा बोलने का यही फल होता
है लो बटा फोडे तुम किसी का नौकर तो फूट गई तुम्हारी । ना, ना उस
बेचारे का क्या दोष ! असल इसी साली पर सनक सवार हो गई। भला
एस भी कोई लटटू होता है किसी पर ! अब बाप रहता दिन भर अस्प
ताल म मरीजो के साथ और बेटी पढाती नौकर को—क ख ग।
भला माना है बूढा सुग्गा पोम ? हा क्या पढता रामटहलुआ ? भेजे में तो
जसे भूसा भरा था, पर इसको भी पढाना था ! यह तो तिरिया चरित्तर'
था, 'तिरिया चरित्तर"। सो घटती गयी पढाई और बढती गयी प्रीत
और एक दिन बना दिया पल्लान इस दुखिया न जीवन भर के दुख का
और भाग गय दोनो चढ कर दिल्ली एक्सप्रेस' पर। अब भला क्या रक्खा
था इस बीस साल के निपट गवार अहीर के छोकरे मे ! यह तो निकही'
चुस्त चलाक' थी। इन्टरेंस 'पास' न सही फेल ही किया था। पर
ना, इसका भी क्या दोष द वह ? पडित बटुकधारी मिसिर क्या कहते
थे ? पट की भूख तो भूख, शरीर की भूख भी कोई चीज होती है। सो
पडित महात्मा क्या झठ बोलेंग ? अनुभव की बात बोलते थे, अनुभव की।
पडित बटुकधारी व कोई धूप म बाल नही पकाया था। तो अब जब काच
कुआर बठाए रहोगे घर मे बीस-बीस, बाईस बाईस साल तक तो शरीर
की भूख नही सतायगी ? और जब भूख लगती है तो कोई भेद करता है

साग सत्तू और पूरी जिलेबी म ! ता सतायी दुखिया का शरीर की भूख और उड़न छू हो गयी वह रामटहलुआ के साथ।

कहा कलकत्ता और कहा बिहार का यह छोटा सा शहर। भागते छिपते वे आ गये यहा पर। पर उस डाक्टर ने बच्चे थोड़े, कच्ची गोलियां नही खेली थी। छपवा दिया दुखिया का फोटो अखबार म और निकाल दिया रामटहलुआ के नाम पर इनाम—पूरे पाच सौ। पर कहा पाते बेटा उसका फोटो ? मा अपन राम तो छटे साड़ बने रहे। रही दुखिया सो छिपी रही पूरे साल भर उस सडास म जहा रामटहलुआ को उबकाई आती थी। जान का मोह भी कोई चीज है ! काटकर फेंक देता कि नहीं वह डाक्टर इस ? पर पहुच सकी थाना पुलिस वहा ? सात साल गुजर गये कि नहीं इसी तरह ? और भगिया की बस्ती छोडकर और कहा मिलती इतनी 'सुरक्षित' जगह। कितना प्यार स रक्खा था उस बूढी ने इसे ! भगवान शाति द उस बूढी की आतमा को सरग मे। पास का पैसा समाप्त हो गया तो चलान लगा रिक्शा रामटहलुआ और घर म बठे बठे बन गयी दुखिया एक बच्चे की मा।

दुखिया बनी बच्चे की मा और पक्की हो गयी गाठ।' अब भागती भी तो क्या भागती छोडकर उसे ! पिजडे का सुग्गा भागकर फिर पिजडे म आता है कि नहीं ? पर संगत का प्रभाव और पेट की आग झूठ है ? उठा लिया झाड़ू एक साल लगते न लगते दुखिया ने। और न उठाती तो करती क्या। रिक्शे की कमाई म आता ही कितना था एक रिक्शा और तीन पेट।

लो, आ गया यह कठहिया पुल। कितना पुराना पड गया है, पर रग 'जस का तस'। सात साल स तो इसे ऐसा ही देख रहा है रामटहलुआ। यह जो बीच की पटरी आज से दो साल पहले उखडी सो आज तक वैसे ही ठक्-ठक् करती है। यही पर तो हो गया था उसके रिक्शे का 'अक्सि-डेंट'। नहीं तो काहे को झाड़ू उठाता वह दुखिया की तरह। कही आदमी भी इतना मोटा होता है ? साला, भैसा था भैसा। रिक्शा पर बैठा तो वह करने लगा चरमर, चरमर। लाख बार कहा—'बाबू, तुम्हारा शरीर तोगा जोग तांगा रिक्शा भागी जाव। पर काहे को सुनता वह बगाली

बेटा। ल ही बठा मेरे रिक्शे का। दाया चक्का फमा इस साली पटरी के पेट म और बाया चक्का चला छूत आसमान और उलटकर आ गया रिक्शा बेटा रामटहलुआ के ऊपर। नीचे वह, ऊपर से माटा बगाली और उसक ऊपर रिक्शा और मुद गयी आखें रामटहलुआ की और खुली तो बड अस्पताल क 'बेड' पर।

ले रे कठट्टिया पुल! न हाता तुम और न बनता बेटा रामटहलुआ भगी। पर ना, भगी तो वह उसी दिन बन गया जिस दिन उस दुखिया ने उठाया थाड़। अब आरत भगिन रहे तो 'मरद क्या सात पानी का पखारा रहेगा? पर उसकी आत्मा शुद्ध है भगवान जानता है। ला, यह दिखायी पडन लगा 'पीपर' का पेड भी। सुना है इस पर 'माक्छात' महाबीर का निवास रहता है— 'जै बजरग बली, काट दो सब पाप अभागे रामटहलुआ का।

जिलाधीश की वापसी

अब लौट चलने मे ही खैरियत थी। उन्होंने तय कर लिया था और वापसी की तैयारी आरम्भ कर दी थी।

वे कुछ दिनो से पूरी तरह ऊब गये थे। दफ्तर जैसे उन पर हावी हो रहा था। स्वयं को उन्होंने दफ्तर से काटकर कभी नहीं देखा। हंसे तो दफ्तर के लिए, रोये तो दफ्तर के लिए, जगे तो दफ्तर के लिए, सोए तो दफ्तर के लिए, सपने देखे तो उनमें सचिकाओं का निपटारा किया, बॉस की डाट सुनी, सहायकों को डाट पिलाई।

पर इस बार तो गजब हो गया। वे किसी बड़ी सी जगह मे जिलाधीश लगे थे। आदत तो जो पडी सो पडी। जिलाधीश वे चौबीसों घटे रहते। पिताश्री के द्वारा दिया हल्का-फुल्का नाम—मनमोहन सहाय—जिलाधीश की भारी भरकम उपाधि के नीचे कहीं दब पिस गया था। ऐसा कि अगर पिता भी कभी मनमोहन कहकर पुकारें तो शायद ही उन पर कोई प्रतिक्रिया होती। दफ्तर की पोशाक मे सो जाना तो आम बात थी। अब यह काम उनकी पत्नी का था कि सुषुप्त जिलाधीश के चरणों के बूट खोले, पेंट बदले और हाथ के हंटर का किनारा करे। उनकी पत्नी उन्हें मनमोहन सहाय के रूप मे पाने को तरसती रही और बच्चों के होठों पर पापा डैडी के सबोधन छटपटाकर कभी के दम तोड़ गये। उनकी अपनी थियरी थी—घर मे जिसकी इज्जत नहीं बाहर उसकी क्या पूछ ? अन्दर जिस पर सर और 'मी लार्ड' के सम्बोधन नहीं बरसाए जाए बाहर कैसे उस पर इनकी धाक लगेगी !

पर उस दिन तो सचमुच गजब हो गया। अपने अन्दर के इस मायाविक परिवर्तन का अन्दाजा तो उन्हें कभी नहीं था। नहीं इस आत्मा-

साक्षात्कार से उन्हें क्षणिक तुष्टि चाहे जो मिली हो, इसके लिए वे तैयार कभी नहीं थे और उन्हीं के परिवार के सदस्य उन पर इस सफल किन्तु हास्यास्पद नुस्खे का प्रयोग करेंगे ऐसा सोचकर उन्हें और वितृष्णा हो आई थी इस जीवन से।

हुआ यह था कि वे उस दिन बहुत थक गए थे। जिले के सुदूर उत्तर का आदिवासी क्षेत्र अशान्त हो आया था। जंगली लकड़िया के ठेकेदार द्वारा किसी आदिवासी किशोरी के साथ छेड़छाड़ की बात पर पूरे वन वासी हाथ में तीर-कमान ले मरने मारने पर उतारू हो आए थे। ठेकेदार के तीन चार लकड़ी गोदामों को उन्होंने जलाकर राख कर दिया था और समीप की एक घनी बस्ती पर दल-बल के साथ चढ़ आये थे। ऐसे अवसरों पर वे कभी पीछे नहीं रहते थे। अपने अनुमण्डल-पदाधिकारियों अथवा पुलिस अधिकारियों के पहुंचने-न पहुंचने के पूर्व ही घटना स्थल पर हाजिर हो जाने के लिए वे पूरे राज्य में विख्यात थे। उस दिन भी वैसा ही हुआ। उन्होंने स्थिति को स्वयं सम्भाला। गोली चलने की नौबत तो नहीं आई पर लाठी-चार्ज से लेकर 'टियर गैस' तक का प्रयोग करना पड़ा। इन सब मामलों में वे बहुत सख्त थे। घायल, कराहते, लंगड़ाते आदिवासी तीर-कमान छोड़ भाग चले।

विजय-श्री से मंडित वे घर लौटे तो थककर चूर थे। बिस्तर पर जाते ही नींद ने धर दबोचा। हमेशा की तरह आज्ञाकारिणी पत्नी ने टूटे खाल सिर के उलझे बालों को ठीक किया और उन्हें निद्रा देवी के हवाले छोड़ स्वयं साथ के कमरे में सो गई।

रात को ठीक बारह बजे टेलीफोन की घंटी बजी थी। आदिवासियों ने संगठित होकर फिर धावा बोल दिया था। दो-तीन लाशें गिर गई थीं। एस० पी० घटना स्थल पर पहुंच चुके थे, जिलाधीश की तत्काल उपस्थिति आवश्यक थी। फोन उनकी पत्नी ने ही उठाया था। स्वयं एस० पी० बोल रहे थे।

सोए जिलाधीश को छेड़ने की गुस्ताखी करने को कोई तैयार नहीं हुआ। उनकी पत्नी तक को यह अधिकार प्राप्त नहीं था। किन्तु इस बीच जब एस० पी० से लेकर डी० एस० पी० तक के कई कॉल आ चुके तो

स्थिति की गम्भीरता का दखते हुए पत्नी ने हिम्मत बाधी। पहले पैरा पर
होले-होले छुआ फिर उन्हें दवाया झकझोरा और जब पैरों से बात नहीं बनी
ता केशा म उगलिया फसाइ ललाट पर हाथ फेरा कधे का थाडा दवाया।
फिर कमर के पास पकडकर हिलाया डुलाया। पर सोये जिलाधीश म कोई
हरकत नही हुई। वह इसस आग नही बढ सकती थी। इस बीच कायालय
से भी कई बार फान आ चुका था। रात की डयूटी का मजिस्ट्रेट भी
दौडा-दौडा पहुच चुका था। उसने भी सर सर की ऊची आवाज
लगाई, पर थके जिलाधीश की नाक जो बजती रही तो बजती रही। कोई
एक सीमा स आगे बढन को तैयार नही था। पर स्थिति थी कि बद से
बदतर हाती जा रही थी। एस० पी० का अल्टिमेटम आ चुका था कि
जिलाधीश को किसी कीमत पर जगाया जाय वर्ना किसी भी क्षण गोली
चल सकती थी और रात क अधकार म कितनी लाशे पट जायेंगी इसका
काई ठिकाना नही था।

इस बीच जिलाधीश क शयन-कक्ष म खासी भीड इकट्ठी हो गयी
थी। बडे बाबू से लेकर छाटे बाबू आफिस सुपरिटेंडेंट आर्डली चपरासी
सभी का हुजम जुट चुका था। सोए जिलाधीश का किसी कीमत पर
जगाना आवश्यक हा गया था, वर्ना जिले की भारी बदनामी हाती और
अब तक का कमाया धमाया नाम मिटटी म मिल जाता।

जब सारे प्रयत्न व्यथ हो गए तो किसी ने सिर पर पानी डालने का
अतिम नुस्खा अपनाने की राय दी। पर बिल्ली क गले म घटी बाधे ता
कौन? किसकी हिम्मत थी सोये सिंह के जबडे म हाथ डालने की। आखिर
जो व्यक्ति सोया था वह मनमोहन सहाय नही एक वरन् बडे जिला का
जिलाधीश था।

कमरे म बहुत सारी मिली जुली आवाजें उठ रही थी। कुछ लोग
जान-बूझकर भी ऊचे स्वर म बोल रह थ पर जिलाधीश बेखबर थ।
यह शायद श्रम स अधिक उस दिन की उपलब्धि भावना का प्रभाव
था कि व घोडे बेचकर पड थ।

जब हार लोगों न हथियार डाल दिए ता उनके आर्डली न कहा, म
अभी आता हूँ। वह हगाम को छोडकर लुंगी और बनियान म ही दौडता

चला आया था। पाच मिनट बाद लौटा ता आफिसियल पोशाक से लश था। पैरों म मोजा के साथ बूट चढे थ। कमर म चमडे की चौडी पट्टी पडी थी और सफेद दूधिया यूनिफाम पर पीतल का चौडा चमचमाता बज लटक रहा था जिस पर बडे-बडे शब्दो म 'आदशपाल, जिलाधीश' खुदा था। युवा, पर अनुभवी आर्डर्ली ने कमरे म प्रवश किया, मजिस्ट्रेट और वडे बाबू को किनार कर, सोय जिलाधीश के पायताने जगह वनाई और अटेन्शन की मुद्रा म आ अपनी दाहिनी हथेली को ललाट ने पास ला, एक जारदार किन्तु निःशब्द सलामी दी। सोये जिलाधीश हडबडाकर उठ बैठे। सभी के चेहरे पर राहत की चमक आई। पर बाद म शामत आई उनकी पत्नी की।

"तुमने यह क्या किया ?

'क्या ?'

"सोय म सलामी दिलवाइ !"

'जिलाधीश को जगाने के सारे उपाय ना असफल हो गय थे।" पत्नी न कहा था और उसी दिन उनके मन मे भारी प्रतिक्रिया जग आई थी। बेकार थी ऐसी जिन्दगी जिसने उनकी स्थिति इस कदर हास्यास्पद बना दी। उन्होंने तय किया, व कुछ दिनो के लिए ही सही अपने को इस जिन्दगी स पूरी तरह काट लेंग। एकाध महीने एकान्त म प्रकृति की गोद म रहग। आर्डलियो, वडे बाबुओ पुलिस आफिसरो बी० डी० ओ एस० डी० ओज इन सबो के घरो से अलग किसी पहाडी स्थान पर जा छिपें ना शायद जिलाधीशी सिर पर से उतर जाये।

बहुत उम्मीद लकर आय थे व इस पहाडी जगह पर। साथ म पत्नी भी थी। अभी एक सप्ताह भी आये नहीं हुआ था कि उन्हें लग गया था कि अब अधिक यहा रहना उनके लिए सम्भव नहीं था। पेड पौध, बर्फ बादल, नदिया झरने उन्हें क्या खीच पात जिलाधीश की कुर्सी किसी जबदस्त चुम्बकीय शक्ति स उन्हें एक हजार किलोमीटर दूर स भी लगातार खीचती रहती। होटलो के बयरा से ले पुलिसवाली सलामी ठोकन की चहत और होटल के बिल को भी फाइल म मागत। एक बार जब बेयरे ने सीधे बिल रख दिया तो उस पर नार से बिगड

पड़े थे कि 'प्रॉपर चनेल से क्या नहीं लाया। बिल का पहले उनके नौकर को मिलना था। फिर उनकी पत्नी को और तब उन्हें। उसकी क्या बिसात जो उनके पास सीधे बिल रख दे।

पत्नी तो दूसरे ही दिन से कहने लगी थी कि वह उनके वश का रोग नहीं था और उन्हें लौट चलना चाहिए। पर वे ही अड़े रहे थे शायद बात बनते-बनते बन जाय। पर रात जो कुछ हुआ उसके बाद तय हो गया कि अब लौट जाने के सिवा कोई उपाय नहीं था।

सुबह पत्नी ने ही इस सबकी ओर उनका ध्यान आकृष्ट किया था। होटल रूम का फर्नीचर टूटा फूटा पड़ा था। आलमारी के कपड़े और पुस्तकें बाहर बेतरतीब फेंकी पड़ी थीं। बिछावन की चादर और टेबुल-क्लाथ फर्श पर फैले हुए थे। लगता था एक तूफान गुजर चुका था कमरे से।

जानते हो यह सब कैसे हुआ? पत्नी ने उन्हें बैड टी देते हुए कहा था।

कैसे? वे कमरे को आँखें फाड़कर देखते हुए बोले थे।

'यह सब तुमने किया।

'मैंने वे कुछ याद करते हुए बोले।

हाँ, तुमने। तुम्हें अब एक नई बीमारी हो गयी—स्वप्न में चलने की और कुछ-न-कुछ करने की। रात भर तुम फाइलें खोजते रहे और बड़े बाबू पर बिगड़ते रहे—

कहाँ रख दिया कंडी फूल बड़े बाबू ने कान्फिडेन्शियल फाइल्स? एसेम्बली क्वेश्चन्स के जवाब डिक्टेट करने हैं।"

यह बात है? वे मस्तिष्क पर जोर देते हुए बोले।

यही बात है। अब तो लौट चलो अपनी जिलाधीशी पर।

लौट चलो। उन्होंने मन मारकर कहा था और वापसी की तैयारी आरम्भ कर दी थी।

भटके हुए

माधवी ने मुनु को चुप कराया है, लल्लू की पीठ थपथपाई है लल्ली के केश ठीक किए है पप्पी का दूध की बोतल थमाई है, मिन्नी का छाती से लगाया है और भिन्ना पडी है—बाप रे, बच्चो की यह बारात। एक हो तो एक यहा तो पूरे सात की फौज। लाख बार इनसे कहा कुछ दुनिया देखा, अखबारें पढो, और नही तो दीवारो की इश्तहारें पढो। पर यहा तो कान पर जू ही नही रेंगी, रह गये ठेठ देहाती के देहाती। बस एक ही रट—पिता जी ने कहा था बच्चे भगवान की देन हैं। जीवात्मा म परमात्मा का अश होता है। आते बच्चो को नही रोकना चाहिये। कौन जाने वासुदेव की आठवीं सतान कृष्ण बन जाय।

भाड म जाय यह दर्शन जो जीवात्मा-परमात्मा की आड म आदमी के पेट म ही लात मारती है—चल्लाई है माधवी, अब कहा गए पिता जी, दान-ध्यान का तरस रहे है उनके परमात्मा-पुत्र, अब क्या नही चिता की राख झाड खडे हो जाते और कहते, लो यह रहा अमृत कलश दे दो एक एक बूद सबको और हमेशा के लिए दाल रोटी के चक्कर म निश्चिन्त हो जाओ। यहा तो मत्र उसको झलना पडता है। ये तो बस महीने म दो सौ रुपल्ली फेंककर निश्चिन्त हो जाते है, अब वह मर या खप इनको क्या ?

ना सब दोष उसी का है। भिन्ना रही है माधवी अपने पर ही। न गाय की तरह इस खूंटे म बधती न आज यह हालत होती। अधविश्वासो और आरोपित आदर्शों के पाटल इस ब्रह्मदत्त म न जाने रखा ही क्या था कि पिताजी के आखो पर यह चढ आया। ब्रह्मदत्त के समान लडके मिलते कहा हैं बेटी ? जैसा नाम वैसा रूप, वैसा ही खानदान। इसके पिताजी को एक दर्जन पुत्र और डेढ दर्जन पुत्रिया थीं। भगवान का नाम ले इन्होंने सबको चलने फिरने योग्य बनाया। बिना स्नान किए मिश्री के

डल्ली भी मुह म नही डालत ये पुण्यवान। उन्ही का प्रथम पुन है ब्रह्मदत्त। बाप का नाम उजागर करेगा ।

सो ता कर ही रहे है पिता का नाम राशन। आग लग गई है माधवी के मन म, बाप ने अठारह पैदा किय ता पुत्र ने सात। पता नही पिता की उम्र आत-आत उनका भी रेकाड ताड कर रख द।

ना, सब दोष माधवी का ही ह। न टिक पाई वह अपनी प्रतिज्ञा पर, न निभा पाई अपन दिए वचन को और यह सब उसी विश्वासघात, उसी हृदयहीनता, उसी धोखाधडी का फल है। भूषण का प्रेत ही हावी हा गया है उसके परिवार पर कि उधर तो साल-साल बच्चा की फौज म नियमित वृद्धि हो रही है और लगातार गिरत स्वास्थ्य क चलत पति की सालाना वतन वद्धि भी बन्द हो गई है।

कहा था भूषण ने कहा जा रही हा उस दहाती पडित की चोटी म बधने। बाध कर रख देगा वह सदा के लिए तुम्ह अपने खोखले आदर्शों की बडिया म। नक बना देगा तुम्हारा जीवन। फूल-सा तुम्हारा शरीर माधवी लता की तरह ही मुरझा कर रह जायगा उसके हवन-कुड की लपटा म और मलती रह जाओगी जिन्दगी भर पूजा के पच पात्रा और धूपदानियो को।

पर कहा सुना था उसन भूषण का कुछ भी। यहा तो इस पर पिता जी क उपदशा का भूत सवार था—मत उतरा मनमानी पर माधवी। भारतीय लडकी कभी होती होगी स्वयवरा, आज तो पिता माता जिसकी उगली पकडवाए उसका पाहुचा पकडकर निकल जाना ही उसका धर्म हा गया है। छाडा भूषण का चक्कर। होगा वह कवि-लेखक अपन घर का। दखी हागी दुनिया उसन। पर ब्रह्मदत्त ता खानदानी लडका है। बिना तराशा हीरा। सजा लो इसे अपन मन की माला म और जगमगा लो अपने सार जीवन का।

सो तो ठीक ही जगमगा गया पूरा जीवन उसका। बच्चा की बारात म घिरी तारा क बीच चाद की तरह जगमग ही ता कर रही है वह। कहा गया वह चाद मा मुखडा जिसके लिए कभी भूषण ने लिखी थी अपनी पक्ति—

'तेरे रूप की चादनी मे, घुल जाए मेरा मन कलुष ।"

अब तो रह गई है याद के सतह की उखडी-उभरी परत—गाला की उभरी हडिडया, आखा के घसे किनारे।

ना, सब पाप उसी का है। किसी का मन तोडना साधारण अपराध है क्या ' बहुत कहा था भूषण ने—मैं तुम्हारे बिना नही रह सकता माधवी ! तुम मेरी प्रेरणा हा मेरे कवित्व, मेरे वृतत्व का अजस्र स्रोत ! तुम्हारे बिना मैं अधूरा ही रह जाऊगा। मत ठुकराओ तुम मुझे !

वह अधूरा रहा हो या नही, म तो पूरी-की पूरी समाप्त हा गई। डूब मरी अपने ही बनाए गडढे के गदले जल म।

यह सब यू ही नही था। भूषण के साथ उसका सबध लम्बा खिचा था। शरीर का न सही, मन का साथ काफी पुराना पड गया था। यह सब शुरू हुआ था, एक कवि सम्मेलन मे। भूषण मच पर मुख्य अतिथि के रूप म बठा था। श्राताओं की पक्ति म आग थी माधवी। कविता विवता तो वह क्या समझती, पर भूषण का व्यक्तित्व उसे भा गया था। मच पर बठे सभी लागा स वह अलग थलग ही था। गौर वण, उन्नत ललाट, नाक्दार भौह और उस पर लम्बा गठीला बदन। मुख्य अतिथि के रूप म जब वह भाषण देने खडा हुआ था ता सभी के साथ उसका चेहरा ही देखती रह गई थी माधवी। पर बाला भी खूब था भूषण। जैसी कविता वैसी ही वक्तृता। कवित्व और वाक्-कला का एसा सयोग शायद ही मिलता है। मन्त्र मुग्ध हो गए थे सब। उसकी तन्द्रा टूटी थी बिन्दु की आवाज पर—"कौन है, तू जानती है इसे ?"

"जानती तो नही हू, पर इसकी कविताए अक्सर पढी हैं। उस दिन रेडिया से इसी का कायक्रम हो रहा था।"

"इसी का ? ' बिन्दु चौंकी तो माधवी को ईर्ष्या हा आई थी।

मेरे पिता जी शायद इसे जानते हैं।" माधवी ने अपना अधिकार जताना चाहा था।

मुझसे भी परिचय करा दे। उसका अटोग्राफ लूगी।" बिन्दु ने कहा था और सचमुच कवि सम्मेलन समाप्त होते ही दौडपडी थी—आटो प्लीज ! ताकती की-ताकती रह गई थी माधवी। पर उसन मन-ही मन

कुछ तय किया था और फिर दूसरे राज तो वह अपने पिता के साथ उसके निवास पर ही पहुच गई थी।

"नही, आपकी कविता न कम, आपके चरित्र न मुझे आपकी तरफ अधिक खीचा है।' जब अधिक उन्मुक्त हो गई थी भूषण से, तो एक दिन उससे कहा था उसने— 'उस दिन नि दु के आटो-बुक पर आपने जो बिना उसकी तरफ एक उडती नजर डाले ही लिख दिया था— 'अनुशासन ही जीवन है'—वही बात तो मुझे काट गई थी।"

"तो आप अनुशासन प्रिय हैं?" चुस्की ली थी भूषण ने।

"हा।"

'तभी तो कच्चे धागे से बध सरकार चले आये है। कहा आपका घर, कहा मेरा, और कही न पहले की कोई जान-पहचान। आपके पिता से थोडा-सा पुराना परिचय है और इसी आधार पर आप मुझे अपना मान बैठी?"

यह तो जन्म जन्मान्तर का सम्बन्ध है। खुश थी माधवी। उसे लगा था भूषण को पाकर अब उसे कुछ पाना नही रहा। कुछ तुकबन्दिया भी करने लगी थी वह। यह सब भूषण का ही प्रभाव था। एक कविता म उसने ठीक ही लिखा था—

> दिना से प्यासी थी,
> जैसे नदी कोई सूखी-सी।
> प्यार का कही नाम नही
> निशान नही।
> पर मिला तो ऐसे
> जसे कही पिशाचपकड ले सन से।

"यह तो एकदम आधुनिक कविता हो गई। क्या पिशाचसे पकडवाया है आपने? मैं पिशाच लगता हू क्याआप को?' चुटकी ली थी भूषण ने तो कट कर रह गई थी माधवी—कहना चाहा था आप पिशाच क्या लगेंगे, भला दुनिया का कोई पुरुष मेरी आखो मे आपके समक्ष ठहरता है क्या? ऐसी ही कुछ बातें और हुई थी जो करीब लाती गई थी भूषण को उसके। एक दिन टेलीफोन से कहा था उसने। 'एक कवि-सम्मेलन छोडकर आ रहा हू तुमसे मिलने। रुकूगा तो देर हो जाएगी।"

"फिर देर से ही आइए न।" किसी तरह कहा था उसने।

"नहीं छोड ही दे रहा हू।"

"क्या ?" या ही पूछा था उसन।

' तुम नही समझोगी।"

"तो कौन समझेगा ?' रही-सही बात भी निकल ही गई थी मुह स । मन की बात तो जीभ पर आ ही जाती है। उसी दिन स जैस सदा-सर्वदा के लिए हो गया था भूपण उसका। शरीर ही नही, मन भी जस-जस सौ सौ रूपो म न्योछावर हो गया था उस पर।

"आपको मोह नहीं लगता न ?" बढती घनिष्ठता के दौर मे ही एक बार पूछा था माधवी ने।

"किस म ?"

"मन तोडने म ? '

"किसका मन तोड दिया मैंने ?"

"मेरा। उस दिन बेकार ही आप ले बैठे थे उस दूर के रिश्ते क किसी चचेरे मौसेरे भाई या जीजा का नाम। क्या पाल रखा है सन्देह का साप अपन मन म !

"धत ! अपना पर कही कोई सन्देह करता है।" जवाब दिया था भूपण ने। पर हुआ वही जो होना था। बढता ही गया था सन्देह के सप का विष दिना दिन और अन्त म विषाक्त ही कर दिया माधवी के सम्पूर्ण वतमान और भविष्य को उसन।

बात फिर टेलीफोन ही पर आई थी। कई बार कहा था भूपण ने, यहा आओ तो। टेलीफोन से अलग ही रही माधवी। बडे खतरनाक लोग हैं यहा के। एक बार नारी कठ सुना तो फिर पीछे भी पड जाते हैं और ऐसे चिपकते हैं कि बस ! पर यही खतरनाक खेल ले बठा था माधवी को। बैठे-बैठे यो ही डायल घुमाया तो लग गया किसी बगाली मोशाय स।

आमि रोबि, रोबि बोलछी।

बाप रे ! यह क्या लग गया है ? साप ही की तरह छोडा था उसन डायल को। पर फिर घुमाया तो वही—रोबि बोल रहा है।

'कौन हैं आप, रोबि कवि ?' यो ही उसके मुख से निकल गया और

ओठ काटा था उसने। भूषण ने कहा था—बच कर रहना इस चक्कर से। पर चलता ही गया था यह क्रम। भूषण तो रहता दफ्तर में और माधवी का एक कान हार्न की आवाज पर और दूसरा रिसीवर के चोंगे पर।

"रखती हूं अब।"

'क्यों ?"

'आ गए वो।"

"कौन ?" रवि घबड़ाकर बोलता।

"अरे कोई नहीं।" कहकर वह रख देती वह रिसीवर को और दौड़ती है भूषण के स्वागत में।

'हलो आ गए तुम ? मैं तो बोर हो रही थी बैठे-बैठे।'

सच कितनी ओछी होती है नारी। इसी सबका तो परिणाम है कि आज झेल रही है, सब कुछ माधवी।

और अंतिम अध्याय जुटा उसकी प्रेम-पुस्तक का उस दिन जिस दिन पूरा-का-पूरा वार्तालाप सुन लिया भूषण ने। कई बार उसने पूछा था—"फोन इंगेज रहता है, माधवी ?"

'नहीं तो।' यों ही टाल दिया करती थी वह। पर उस दिन एक्सचेंज से कहकर डायरेक्ट लाइन ले लिया था भूषण ने और सब कुछ सुन गया था वह। ओह, इसी दिन तो तुषारापात हो गया था। उसके प्यार के नन्हें पौधे पर और भूषण के सिर पर चढ़ने-चढ़ते वह खटे में बंध गई थी पण्डित ब्रह्मदत्त के और बन गयी थी, एक नहीं, दो नहीं, सात सात बच्चों की मां। सत्ताइस की इस कच्ची उम्र में ही।

कोई अच्छी फिल्म लगी थी चित्रा में। कहीं धूप कहीं छांव दिन में ही भूषण ने तय कर लिया था, चलोगी ? और उसके आफिस जाने ही उत्सुकता जगी थी माधवी के मन में। अब तक जिसकी आवाज ही सुनती आई हूं, कैसा होगा वह देखने में।

"रवि !" डायल घुमा ही दिया था उसने।

'डार्लिंग !'

ओह, इसी बात पर तो कट मरती थी वह।

'चल रही हू कहीं धूप कही छाव। आ जाओ।'

'चित्रा म ?'

'हा।'

"बडी व्यग्रता है तुमको ?' रवि ने टोका था।

तुम्ह पहल-पहल देखना जो है ?"

'कसे पहचानोगी तुम ?'

'मरी गाडी का नम्बर नोट करो। मैं सबसे आग खिडकी के पास रहूगी। आ के !"

"ओ के।'

और भूपण की गाडी का नम्बर लिखा दिया था उसन। आगे पूव लाड जताया था उस पर—"आज मैं आग बठूगी।'

'क्या ? आश्चय स पूछा था भूपण न। "तुम मम्मी के साथ पीछे बठो। आगे शादी के बाद बैठते हैं।"

गुदगुदी लगी थी माधवी के मन मे शादी की बात पर। इसी क्षण का तो वह इतजार कर रही थी। पर क्या पता था कि भूपण यह सब व्यग्य म बोल रहा है। पूरा टेलीफोनिक वार्तालाप जो सुन चुका था वह।

आज तुम्हारे साथ बैठन का जी हो रहा है।' माधवी ने कहा था तो मुस्कराकर वह बगल हो गया था। काश उस मुस्कान की भगिमा देख पाई होती वह उस दिन। पर जो होना था होकर रहा। लौटते ही कह दिया था "भूपण ने—तुमन बहुत गलती की माधवी !

"क्या ?"

एक नन्हे पौधे को जन्म लेते ही जड से उखाड दिया।"

"मतलब ?" सकुचाई सी कहा था माधवी ने।

"मतलब छोडो, पर आज से तुम्हारा-मरा सम्बन्ध खत्म।'

उसी दिन ढह गया था माधवी का नन्हा सा ताजमहल।

दूसरे ही दिन आया था पण्डित ब्रह्मदत्त का प्रस्ताव। पिता की सीख का ब्रह्म वाक्य मान अगीकार कर लिया था माधवी ने। ब्रह्मदत्त के मोटे मुस्टडे शरीर, लम्बी लहराती चोटी और कमर से सत्याग्रह करती दसगजी

ब्राह्मणी धोती को भी। ठीक वस ही जसे उसने अंगीकार कर लिया है उनके मुना को, मुन्नी को, लल्ली को, पप्पी को, सुधी को, शांति का और छाती म लगी वेबी को। पता नही सात पर ही यह बारात समाप्त होगी अथवा ।

'मम्मी, आ मम्मी ! पप्पी की आवाज पर टूटी है माधवी की तन्द्रा। लो अब वहा का भूषण और वहा उसकी कविता, अब ता ले-देकर रह गई है माधवी की यह मनहूस दुनिया—जिसम ब्रह्मदत्त है और है उसकी अनोखी सतरंगी बाल सेना।

ऊंचाइयाँ

'यह आल इंडिया रेडियो है, अब आप ब्रजेश कुमार से । रेडियो की आवाज से अपने को काट कर मैं बाहर देखता हूं। एक छोटे-से शहर का छोटा-सा एयर फिल्ड। फिर भी साधारण से अधिक विस्तृत मैदान और उस पर दा ना रनवे। काम के बड़े-बड़े घन पौधे सितम्बर के इस अन्त म सफेद फूलो म लद गए हैं और पूरा एयरोड्रॉम ऐसा लगता है जसे जगह-जगह सफेद बादल उतर आए हो ।

उस दिन हम सचमुच बादलो के बीच से गुजर रहे थे। कलकत्ते से डिब्रूगढ के लिए मैंने एक सीट बुक करायी थी। इंडियन एयर लाइंस का फाक्र फ्रेंडशिप दमदम एयर पोर्ट पर एक विशालकाय पक्षी-सा आ लगा था।

तब हम बीच के हॉल की बगल में बने रेस्तरा म कोल्ड ड्रिंक ले रहे थे। मरी सीट की बगल म स्ट्रा-हैट लगाए एक जमन बूढा बैठा था और उसके सामने एक फ्रेंच औरत। मेरे पीछे की सीट पर दो अमरीकन, एक नीग्रो लडकी के साथ बठे थे। रेस्टारेंट के रेडियाग्राम पर "जॉज संगीत' चल रहा था और नीग्रो लडकी कभी बाए और कभी दायें उचक कर दोनो अमरीकनो के बाजुओं म चिकोटी काट रही थी। अमरीकन, संगीत के धुन म मस्त हो, हर चिकोटी पर अपने हाथ के बियर का ग्लास लडकी के होठो से लगा देते थे।

'ये नीग्रो व्यर्थ का हो हल्ला मचाते हैं कि अमरीका म रगभेद चोटी पर है।' बगल मे बैठे मजुमदार ने ऊंचे स्वर म कहा।

'ये हो-हल्ला नीग्रो पुरुष ही मचाते होगे, औरतें नही ।' मैंने मुस्करा कर कहा।

'ठीक कहते हो। देखो न, इस काली लडकी की चिकोटियां, ये दोनो किस तरह हस-हस कर झेल रहे हैं ।'

"एव्री थिंग इज फेयर इन लव ऐंड वार। प्यार मे सब चलता है।" मैंने बात टालने की मुद्रा मे हस कर कहा।

"इसे तुम प्यार कहते हो ?" मजुमदार अपने कोल्ड ड्रिंक का ग्लास मे हिलाते हुए बोला।

"मैं कहा करता हू ? पर, इन तीनो से पूछोगे तो व यही कहेंगे।' मैंने अमरीकन और नीग्रो लडकी की टेबुल की ओर देखते हुए कहा और मेरे होंठो पर एक हल्की मुस्कान खेल गई। अमरीकन के दाहिने बाजू पर चिकोटी अब की गहरी बैठी थी और वह तिलमिला उठा था।

'डैम देम।" मजुमदार बोलता है।

"तुम आज इतने सीरियस क्यो हो ?" मैं मजुमदार के चेहरे पर सीधे देखते हुए बोलता हू।

"सीरियस मैं नही हू पर जिस प्लेन से तुम जा रहे हो उसके पाइ-लट और एयर होस्टेस दोनो सीरियस हैं। गाड ब्लेस यू।"

"यू मीन इन लव ?"

"हा। अब तो यह पूरे दमदम की कहानी बन चुकी है। सुना है, एयर लाइन्स ने उनकी शादी म टाग अडानी चाही तो व नौकरी छोडने पर उतारू हो आए।"

'यू मीन इट ? इतनी अच्छी नौकरी य महज भावनाओ के उफान मे छोड देंगे।'

'हा। यह मात्र भावनाओ का उफान नही है। यह दो अमरीकनो और एक नीग्रो का, राह चलते का मन-बहलाव भी नहीं है। यह मिस सपना और कैप्टेन दत्ता का गत सात वर्षों का प्यार है।" मजुमदार अपनी स्वाभाविक गभीरता से बोला।

'तुम तो इस तरह कह रह हो जैसे प्यार कैप्टन दत्ता को नही, तुम्ह हुआ हो।' मैं हस कर बोलता हू।

"मैं इन दोनो को गत पाच वर्षों से जानता हू। मजुमदार आरम्भ करता है "लाखो की जायदाद छोडकर पिता के मरने के बाद दमदम के चक्कर काटने के अलावा मेरा काम ही क्या रहा है ? प्यार म तो आदमी जान भी देता है तुम नौकरी छोडने की बात क्या करते हो ? फिर तुम्ही

ने तो कहा था—एव्री थिंग इज फेयर इन लव एंड वार।"

'दत्ता की काबिलियत का न तो इस एअर लाइन्स में कोई पाइलट है न मिस सपना की तरह खूबसूरत कोई एयर होस्टेस। सुना है सभी डिफिकल्ट फ्लाइट्स पर ये ही दोनों "बुक" होते हैं। एक प्लेन को संभालने के लिए तो दूसरी यात्रियों के मनोबल को ऊंचा रखने के लिए। इन्हें सर्विस में हटाने का निर्णय कर एयर लाइन्स ने "वाइज" निर्णय नहीं लिया।

'ग्रेट! तुम सचमुच इंडियन एयर लाइन्स की रत्ती रत्ती की खबर रखते हो।' मैं कहता हूं, और इसी समय माइक पर प्लेन छूटने के समय होने की घोषणा पर हम दोनों उठ खड़े होते हैं।

बी०ओ०ए०सी०, पान एयर लाइन्स, एयर इंडिया आदि के काउंटरों को पार करते हुए इंडियन एयर लाइन्स के काउंटर पर पहुंच मैंने अपना लगेज दिया और फिर वहां की औपचारिकताएं निभा, प्लेन की ओर बढ़ा। प्लेन रिफिलिंग कर तैयार था। एयरपोर्ट के मैकेनिक सब ठीक-ठाक कर ओ० के० कर गए थे।

हमारे साथ कोई तीस यात्री थे। मुझे पीछे, खिड़की के पास की सीट मिली थी। मेरे ठीक पीछे खड़ी थी 'एयर होस्टेस" सपना। घुंघराले केशों और भरे चुस्त शरीर वाली वह लड़की अपने गुलाबी परिधान में सचमुच किसी सुखद स्वप्न से कम नहीं लग रही थी।

"हम गोहाटी, डिब्रूगढ़ के लिए रवाना हो रहे हैं। हमारे मुख्य चालक हैं कैप्टेन दत्ता और हमारी ऊंचाई होगी पन्द्रह हजार फीट। गोहाटी तक की दूरी कोई चालीस मिनट में पूरी की जायगी। कृपया अपनी पेटी बांध लें।' सपना की आवाज माइक पर अंग्रेजी और हिन्दी में गूंज गई। एक मधुर संगीत-सा पूरे प्लेन में तैर गया जैसे चांदी की कई छोटी घंटियां एक साथ बज उठी हों।

'यह क्या आपने पेटी नहीं बांधी?' एयर होस्टेस मेरी बगल वाली सीट के पास आ गई थी।

'नहीं मुझे डर नहीं लगता।' सीट के सज्जन ने जवाब दिया।

'पर हमें लगता है।' एयर होस्टेस सपना ने चुटकी ली और मेरे

होठों पर एक मुस्कान खेल गई। कभी-कभी भगवान एक ही आदमी को सब कुछ कैसे दे देता है—रूप भी कंठ भी बुद्धि भी।

'यह ऑल इंडिया रेडियो है पार्लियामेंट में आज के नो कान्फिडेंस मौसम पर हुई बहस में ।" एयरोड्रोम में लगे रेडियो ने फिर ध्यान खींचा है। न्यूज चल रही है, पहले अंग्रेजी में अब हिन्दी में। मैं कमरे के चारों तरफ देखता हूं। इस छोटे एयरोड्रोम पर ले देकर दो ही कमरे हैं। इस तरफ का यह कमरा ऑफिस के काम में आता है, उस तरफ का बड़ा-सा हाल वेटिंग रूम है। मेरे दो-तीन साथी उधर के बड़े हाल में बैठे मैगजीन्स के पन्ने उलट रहे हैं मैं तब तक यहां मिस्टर पाडुरिक के पास बैठा सपना की दुनिया में खो गया हूं। मिस्टर पाडुरिक इस एयरपोर्ट के सब कुछ हैं। एकाउंटस देखने से लेकर वायरलेस आपरेटर तक काम कर लेते हैं।

'प्लेन आज शायद ही आए सर।" पाडुरिक ने रजिस्टर के ऊपर से अपने मोटे चश्मे और छोटी आंखों को उठाकर कहा है।

"क्या !" मैंने घबडाकर पूछा। मुझे हर हालत में आज छः बजे के पहले कलकत्ते पहुंचना ही है।। मुझे इस विलम्ब का पता रहता तो मैं कल सुबह की ट्रेन से ही निकल गया रहता। मैंने हडबड में अपने हाथ में पड़ी पुस्तक के पन्ने उलटे हैं और उसमें पड़े सुनहरे कार्ड पर दृष्टि डाली है। हां, हर हालत में मुझे कम से कम 5 बजे दमदम पहुंचना ही है।

'क्या मिस्टर पाडुरिक, प्लेन नहीं ही आएगा क्या ?" पाडुरिक का जो मेरी बात को अनसुनी कर गए थे, मैंने फिर याद दिलाया।

"मौसम जो खराब है। आज चार दिना से यही हाल है। पूरे नार्थ बेल्ट में मौसम का यही हाल है। दमदम से कितने फ्लाइट कैंसिल हो चुके हैं। पूर्व उत्तर में बादलों की जमघट नहीं देखते ?"

बादल की बात याद आते ही मैं फिर इंडियन एयर लाइन्स के 'फोकर' प्लेन पर लौट जाता हूं।

"बादलों से गुजरते समय एयर पसेज 'लीक' करने लगता है मेरी सीट के ठीक ऊपर से टप-टप चूते पानी को कागज के टुकडे से पोछती होस्टेस सपना बोली है।

'मिस !'

'बोलिए ?"

क्या मैं आपकी पुस्तक देख सकता हू ?"

क्यो नही ?" हाथ की अग्रेजी पुस्तक का मेरी ओर बढाते हुए वह बगल से निकल गई है। खुशबू का एक झोका जैसे सामने से सरक गया हो। पुस्तक को सीट के सामने के "कटेनर" म रख, मैं खिडकी की राह नीचे देखने लगा हू। प्लेन, गोहाटी के ऊपर मे गुजर रहा है। गुफाओं और वनस्पतिया से ढकी पहाडिया के ऊपर से गुजरते हुए, नीचे की धरती किसी रिलीफ-कैम्प सी लग रही है। पहाडा से उछलती-कूदती, ढलान की ओर भागती नदियो की धाराए पतली धुधिल लकीरा-सी दीख रही हैं और बादला के पत्त दर पत्त पहाडिया और प्लेन के बीच गुलगुल कालीन से बिछ गए हैं।

हजारो फीट की ऊचाई से उडते हुए, एक बात मरे मन म आती है, बादल, धूल, गद, नदी, पहाड ये सारी बाधाए धरती की ही हैं। ऊचाइया पर बाधाए भी कम होती हैं, प्रतियोगिताए भी। अब इन ऊचाइया पर न तो एयर लाइन्स के इस फोकर फ्रेंडशिप को किसी प्रतियोगिता का भय है न इसकी एयर हाम्टेस को। एक की गति सुरक्षित है, दूसरे का प्यार। यह किसी टेलीफोन ऑपरेटर का प्यार नही जिसे हर मिनट किसी अनजाने स्वर का खतरा बना रहता है।

बगल की हल्की आवाज से मैं चिहुका हू। खुशबू का एक परिचित झोका जैसे वहा आकर रुक गया है। खिडकी से आखें मोड म उधर देखता हू—सपना खडी है।

'आप मिस्टर   हैं न ?" वह मरा नाम लेती है। मैं अवाक हो जाता हू।

क्या ?'

मैंने अभी बुकिंग चाट से 'कन्फम' किया है। मैं आपकी कहानिया की "फन' हू। देखिए न इस "मग्जीन" म भी आपकी फोटो छपी है। हाउ ग्लेड टू सी यू ?"

वह धारा प्रवाह बोल गई है और मैं उसकी ओर आश्चय से देखते हुए एक क्षण को दाशनिक हो आता हू। बाहर हजारों फीट नीचे वनस्प

तियो, वादियो और पहाडिया के रूप मे अपनी सारी गरिमा मे विस्तत प्रकृति और भीतर सहज, सौम्य गुलावी परिधान मे ढकी, किसी आकाश परी-सी, एक अदद मानवीय आकृति। दोना म कौन ज्यादा आकपक है, कौन ज्यादा मादक ? प्रकृति, मनुष्य स अधिक वलवती हो सकती है, पर शायद उससे ज्यादा आकपक नही। मनुष्य, मुख्यत औरत, विशेप कर इडियन एयरलाइस के "फाक्र प्लेन" की वह एयर होस्टेस, रवि के सोनार-वगला की यह वग-वधु, प्रकृति के सार पहाडो, जगलो, जल प्रपातो और वादला से ज्यादा सुदर है, ज्यादा माहक। पर, प्रकृति की एक हल्की भू भगिमा, वादला की एक महज आच मिचौनी विजली की एक हल्की वेदर्दी, मानवीय सौंदय की इस अनुपम प्रतिमूर्ति को इसके सारे प्रशसको के साथ नीचे हजारा फीट गहराइया मे दफन कर सकती है।

इस अशुभ ख्याल के साथ ही मरा हृदय काप गया है और मैंन 'क टेनर मे रखी पुस्तक निकाल ली है। पुस्तक खोलत ही जो चीज मरे हाथ आई है वह है एक 'वेडिंग' काड। गुलावी लिफाफे के अदर, गोल्डेन इटानिक अक्षरो म छपे काड पर मेरा ध्यान गड गया है।

'सो यू हैव गाट इट ?" वगल म खडी सपना वाली है।

"हा आपकी शादी का है न ?"

"यस, वी आर गोइग टू वी मैरिड। आई एड कप्तन दत्ता।"

"कैप्टन दत्ता ! यू मीन दी पायलाट ?' मैंने यू ही पूछ लिया है। ता मजुमदार की वातें सही है। सचमुच वह कभी-कभी वहुत दूर की लाता है।

हा दत्ता, दी पायलट। हम दोनो एक-दूसरे को बहुत चाहत हैं। आप शादी म आयेंग न ? शादी के वाद हम वायुयान की नौकरी छाड देंगे। कप्तेन के पिताजी एक वहुत वडा फाम छाड गए हैं। हम वहीं पर शाति, सुख और सम्पन्नता की जिदगी जीयेंग। जस्ट ए मिनट ।" वात की वीच म छाडकर वह प्लेन के पीछे भागी है ।

"योर अटेंसन प्लीज। अव दा मिनट म हम गाहाटी एयराडॉम पर उतरन वाल है। कृपया अपनी पटिया वाध लें ।'

'यदि आपको असुविधा नहीं हा ता हम एयराड्राम के लाउज म बैठ

कर अपनी बातें पूरी कर लें प्लेन यहा आधा घटा रुकेगा।" एनाउन्स कर वह मेरी बगल म आ गयी है। मैं उसके साथ 'टकबीट' तक आता हू। सीढ़िया उतर छोट स फील्ड को पार कर हम गाहाटी एयरोड्राम के ये लाउज तक पहुचे हैं।

"सचमुच आप बहुत अच्छा लिखते हैं। वडरफुल। कभी-कभी तो आपकी कहानिया के लिए म स्टाला की सभी 'मैगजीन' उलट जाती हू। कई बार तो मैंने सम्पादको से भी आपकी कहानियो के लिए तकाजा किया है।"

अच्छा !'

मैं कहती हू कि आप अग्रेजी म भी क्या नहीं लिखते ? क्या करने स आपके रीडर्स कई गुना बढ जायेंगे "

'मैं प्रयत्न करूगा।' मने छोटा-सा जवाब दिया है।

'सच पूछिये तो आठ साल की नौकरी के बाद आकाश की इन ऊचाइयो स बहुत डर लगने लगा है।" लाउज की एक अपेक्षाकृत शान्त जगह पर दो कुर्सियो पर जम जाने के बाद उसने फिर आरम्भ किया है।

ऊचाइया हमेशा भय का कारण रही हैं।' मैंने यो ही कह दिया है।

'उनसे गिरने का जो भय रहता है।' उसने हसते हसते कहा है और मैंने उसके चेहरे पर आसमानी बादलो की तरह ही एक धुधली परत देखी है।

बाहर जोरो से पानी पडने लगा है। असम की इन पहाडी इलाकों का कोई ठिकाना नहीं। अभी-अभी उतरते समय एयर फील्ड में सुनहली धूप पसरी हुई थी, अभी-अभी पानी पडने लगा।

किसी का ठिकाना नहीं है मिस्टर पालित, न इन ऊचाइयो का, न इन आसामी पहाडियो का। ऊचाइयो की नौकरी करते तो आठ साल हो गए, असम की इन पहाडियो के ऊपर से दो महीने से अक्सर गुजरना पडता है। भगवान न करे, ये ऊचाइया तो जिन्दगी म एक ही बार छलती है पर ये पहाडिया हमे अक्सर छलती रहती हैं। दो महीने में ही कई बार फ्लाइटस' कैंसिल हुए हैं, कई बार 'शैडयूल्स' बदलने पडे हैं।

आज इस काने म बादल तो कल उस काने म तूफान। आज 'भिजिबि-लिटी' गायब तो कल एयरपाट 'फलडेड'।

"तुम तो खासे दाशनिक की तरह बात कर रही हो, मिस सपना!" मैंन कॉफी की एक चुस्की ली है।

"दाशनिक य ऊचाइया ही बनाती ह, मिस्टर पालित ! दिन के बारह घटा म आठ घटे जो बादला के बीच ही गुजरता हो, वह धरती की बाते कितनी करेगा?"

"ऊचाइया पर ऊचे ख्याल आत है और ऊचे ख्याल ही शायद व्यक्ति को सामान्य विचारा से दाशनिक चिन्तन की आर प्रेरित करते है।" उसका प्याला खाली हो चुका है।

"शादी का ख्याल भी ता ऊचा ही ख्याल है। यह भी ऊचाइया पर ही उपजा हागा।' मैंन हल्की चुटकी ली है।

"शादी का ख्याल अपने म काई ऊचाई रखती हा या नहा पर मरी और कप्टन दत्ता की शादी जरूर ऊचाई की उपज है, क्योकि यह प्यार की उपज है और प्यार ता शायद भगवान है न, भगवान जो आकाश की इन सारी ऊचाइया से भी ऊपर न जाने किन ऊचाइया में रहता है।' कह-कर उसन दो और प्याला का आडर दिया है। मैं उसके चेहरे की ओर दखने लगा हू।

'आप बहुत मधुर है मिस सपना, मैं साचता हू घर लौटकर आप पर एक कहानी लिखूगा। आप बाहर स जितनी खूबसूरत है, अन्दर से उससे ज्यादा ललित। सचमुच अन्दर-बाहर का ऐसा सुखद सयाग बिरले को ही मिलता है।" म शायद कुछ अनधिकार बाल गया हू और वह हडबडा कर बोली है

"नही नही आप मुझ पर अभी कहानी नही लिखेंग, मिस्टर पालित ! अगर आपन अभी लिख दी तो वह कहानी अधूरी रह जाएगी। अभी मरी जिन्दगी का सबसे बडी कहानी लिखी जानी शेष है और वह कहानी लिखेंगे कप्टन दत्ता।' वह तपाक से बोली है। उसके चेहरे का रग सहसा गुलाबी से हल्का लाल हो आया है।

'प्लेन छटन का समय हा गया है।' बोलती हुई वह खडी हा जाती

है। मैं उसके साथ हो लेता हू। फिर कोई खास बात नहीं होती है
सपना की पुस्तक म उलझ जाता हू, वह यात्रियों को अटेंड करने में
हो जाती है। आधे घटे के बाद मोहनबाडी (डिब्रूगढ) का एयरोड्रो
जाता है।

"योर अटेन्सन प्लीज। यह मोहनबाडी है, हमारा प्लेन ।"

'आपको बुरा तो नही लगा, मिस्टर पालित ?" एनाउसमट स
कर वह मरी बगल मे आई।

"किसका ?'

"उसी कहानी वाली बात का।"

"नही तो।"

"हा, आप 'माइड' नही करेंगे। प्लीज! मेरी 'वेडिंग' म तो आ र
न ?"

"ओह अवश्य अवश्य आऊगा, मिस सपना। कलकत्ते में ही तो श
होगी '

"हा, कलकत्ते म। यह काड आपका हुआ। लाइए आपका नाम लि
दू।"

वह किताब की पीठ पर काड रख कर मेरा नाम लिखती है अ
उसे फिर किताब म रखकर ही लौटा देती है।

"थ्यार बुक, मिस सपना।' मैं किताब लौटाते हुए बोलता हू। अब
हम नीचे आ गए हैं।

"शादी मे आइयेगा तो लेते आइयेगा। बाई!' वह मुस्कराकर ह
हिलाती है।

'बाई!" म भी हाथ हिलाकर जवाब देता हू।

"यह ऑल इडिया रेडियो है आज पालियामट ।'

मैं प्लेन की दुनिया से फिर धरती की नीचाई पर उतर आया हू। मिस
पाडुरिक शायद आसमान का रग देखने के लिए कमरे से बाहर हैं। म
हाथ म सपना की वही पुस्तक है उसम विवाह का वही निमत्रण पत्र
आज शाम सात बजे ही तो उसकी शादी है पता नहीं मौसम की खरा
के चलते प्लेन कितनी देर म आएगा ।

"यह आल इडिया रडियो है' सहमा रटियो क असामान्य ऊंचे स्वरन मरा ध्यान खीचा है दमदम से उडा एयर इडिया का फाकर फ्रेंडशिप' कल असम की पहाडियो स टकराकर चूर हो गया । मरन वाना म चालीस यात्रियो के साथ पाइलट कप्टेन दत्ता ओर एयर होस्टेस मिस सपना भी है ।

' नहीं नहीं । एमा नही हो सकता । म जोर स चिहुकी हू और मर हाथ की किताब गुलाबी काड के साथ छिटक कर दूर जा गिरी है।

"ऊचाइया पर बादल अब भी धिर ह । प्लन का कोई ठिकाना नहा । पत्ताज्द शायद आज भी कसिल कमरे म घुसत हुए मिस्टर पाण्डेय बानन ह और मरी आखा म पानी दब ठिठक जाते ह ।

एक और लक्ष्मण रेखा

मौसम भी एक अजीब चीज है। कभी कभी भीतर बाहर एक साथ खराब होता है। रात देर तक वफ पडी है वर्फानी हवाए वही ह और पूरा का पूरा होटल डि एवरेस्ट' जस रात भर ठण्ड से सिसकारिया भरता रहा है। और जब यह सुबह सुबह की डाक और यह मोटा चौडा लिफाफा ? म भीतर बाहर साथ साथ जम उठा हू गाडी की चाबी जेब म डालता हू और गरज से गाडी लेकर यूथ क्लब की तरफ भागता हू। यह होटल भी क्या है कहने का तो इतना बडा पर सुबह के ब्रेक फास्ट का भी प्रबध नही पर सुबह-सुबह क्लब म भी मैं बडबडाता जा रहा हू, सडक वफ स पटी है माडा पर जीप को सभालना मुश्किल हो रहा है, पर फस्ट गियर म इजिन डाले मैं भागा जा रहा हू।

'हलो डियर ! तुम इतनी सुबह-सुबह ?' कथी है। पर यह इतने सवेरे यहा कैस फट पडी है। मैं कथी को विश' करता हू ओवरकोट को कुर्सी की पीठ पर फेंकता हू और टेबल पर माथा टेक 'अटेडे ट' के आने की राह देखता हू।

रात पूरी पन्द्रह इच वफ पडी है। स्केटिंग को चलना है क्या ?' कैथी कधे तक कटे अपने सुनहले बालो को झटकती है।

हाउ सिली ! मैं बडबडाता हू, "लडकिया के केवल दिल ही दिल होता है दिमाग नहीं।"

'व्हाट डू यू से स्वीटी ?' कथी बात रोक लेती है। अब तक वह मेरी कुरसी की बाह पर बठ चुकी है। मैं उसके चेहरे के रग से मच खाते उसके बालो को देखता हू। और फिर जेब म पडे मोटे लिफाफे को टेबल पर पटक देता हू— हापलेस। दीज ग म आर ब्रेनलेस श्रीचस।' मेरे मुह से निकल जाता है और कथी अब की बार बुरा मान जाती है, आह डियर ! यू स सा ?'

"आई डोंट मीन यू, आई मीन सिरी !' मैं लिफाफे को खोलते हुए बोलता हूं।

"ओह, सिरी अगेन !" कैथी मेरे केशों में अंगुलियां फंसाकर बालती है और मैं अनमना-सा पत्र के पन्नों पर एक उड़ती-सी निगाह डालता हूं। सिरी लिखती है

"सब कुछ समझ पाती हूं, पर इतनी-सी बात नहीं समझ पाती कि मेरी गलती कहां से और कैसे शुरू होती है। सच, स्वीकृति ही खो गई न मुझे? तुम मद भी क्या होते हो, अंधेरे में रखे रहो, भूल भुलैया में टांगे रहो तब तक तो ठीक पर जहां दिल खोलकर रख दो, संशय के परदे हटा दो कि खुले पिंजड़े के पक्षी की तरह फुर ! काश ! यह सब मुझे पहले पता लग गया रहता। काश ! विताया के इस तर्क की सम्पुष्टि मुझे तुम्हारी कीमत पर नहीं करनी पड़ती।

जानती हूं, पढ़ोगे नहीं यह सब। एक समय था जब मेरी चार चार पंक्तियों की चिट्ठियों के लिए मेरे घर के चौन्ह फेरे लगाते थे और जवाब में चौबीस चौबीस पन्ने लिखते नहीं थकते थे। अब तो मेरी चिट्ठियां अंगीठी सुलगाने के काम पर अब अपने ही किए का पछतावा क्या? नहीं लड़कियों को इतना पागल नहीं होना चाहिए। संशय और संयम ही उनके दो अस्त्र हैं, अगर वे ही छूट गए तो

नहीं, पढ़ोगे, तब भी मुझे लिखना ही है क्योंकि कभी कभी किसी के पढ़ने के लिए नहीं, केवल लिखने के लिए लिखना पड़ता है। न पढ़ो तो न पढ़ो, लिखकर मैं अपनी व्यथा तो कम कर लूंगी, लिखने पर ही एक बात याद आ गई।

एक लड़का था, जब मैं फिफ्थ ईयर में हिंदी में थी। नया नया क्लास शुरू हुआ तो बड़े चाव से मेरी तरफ देखता था। क्लास में और सारी लड़कियां थीं, पर उसने मुझे ही क्या चुना यह तो वह जाने या तुम। होली के अवसर पर 'मिस यूनिवर्सिटी' की 'टाइटल' भी तुम्हीं लोगों ने दी थी न? खैर, यह सब लिखने का मेरा मकसद कुछ और नहीं, अब हो भी नहीं सकता। तो कह रही थी, वर्मा था उसका नाम। शायद पहचान गए होगे या नहीं भी, क्योंकि तुम अब बड़े आदमी हो गए हो। खैर, उसने

एक सुबह मुझे सम्मेलन लाइब्रेरी जाने का कहा। पता नहीं मैं क्यों आकृष्ट सी हो गई थी उसकी तरफ। ठीक समय मैं लाइब्रेरी पहुंची तो देखा वह उपस्थित था। शरीर पर बगुले के पंख की तरह नये धुले कपड़े, आंखों पर धूप का काला चश्मा, होठों के बीच सिगरेट। मुझसे यह हल्कापन बर्दाश्त नहीं हुआ और मैंने अपना रुख बदल दिया। उसके बाद उसकी दीवानगी और बढ़ गई। हर रोज उसके बीस तीस पत्र मेरे पास आने शुरू हो गए। कभी डाक से, तो कभी मेरे फादर की डिस्पेंसरी की खिड़की की राह से। क्लास में मेरा रुख देखकर उसे कुछ बोलने का साहस नहीं था। मैं उसके पत्रों को शुरू में बिना पढ़े ही उसके मन से लौटाती रही फिर उन्हें फाड़कर फेंकना शुरू कर दिया। पर उनकी संख्या में कोई कमी नहीं आयी। मैं उस समय उन बातों पर खूब हंसती थी और सोचती थी, ऐसी भी क्या दीवानगी! कोई मुझे न पूछे, मेरी जूती से। एक बार के बाद दुबारा आंख उठाकर न देखूं। पर आज मुझे वर्मा की व्यथा का सही अन्दाज लग गया और मुझे लग गया कि परिस्थितिवश कोई भी कभी भी ऐसी दीवानगी पर उतर आ सकता है कि कभी की पास आती फिर हाथ से निकल जाती चीज कितनी जानलेवा होती है कि आदमी सब कुछ बर्दाश्त कर सकता है, पर अपने अरमानों की अर्थी को अपने ही कन्धों पर ढोना उसके वश की बात नहीं। और जैसे पानी में डूबता हुआ तिनके को जहाज समझ लेता है उसी तरह अपने सर्वस्व को लुटते हुए देखकर आदमी सारे होश हवास खो मान अपमान की सारी सीमाओं से परे हो अपने उजड़ते नीड़ के तिनके तिनके को समेटने के लिए पागल हो गलत-सही दिशाओं में हाथ पैर मारना शुरू कर देता है।

कभी कभी सोचती हूं कहीं वर्मा की ही हूक तो नहीं खा गयी मुझे कि जिस धरती को ठोस चट्टान समझकर पैर रखना चाहा था वह रेत के ढूह की तरह पैरों के नीचे से खिसकती चली जा रही है पर नहीं मेरी व्यथा कहीं इससे ज्यादा है। तिरस्कार और उपेक्षा के बाद भी मर्द फिर भी मर्द ही रहता है। लाख औरत के सामने घुटने टेके पर उसके द्वारा तिरस्कृत और अपमानित होने के बाद एक बार धूल झाड़कर खड़े हो जाने पर फिर उसकी पीठ पर हाथ नहीं धर सकता, पर औरत? औरत का अरमान

वालाओं के हाथों से भरते इंगलिश रम और स्कॉच के प्यालों के सामने मेरे हाथ के चाय के फीके प्याले भी याद आते होंगे, क्या शरीर से कसी लिपटी साड़ी तो तुम्हारे सारे 'टेस्ट' को चौपट कर देती होगी। है न ?

नहीं, यह सब लिखने का मतलब कुछ और नहीं। मैं तुम्हें उलाहना नहीं दे रही और न इस तरह तुम्हें अपनी तरफ आकृष्ट करने का ही मेरा कोई इरादा है। जब गत तीन साल के मेरे सौ के ऊपर पत्र तुम में कोई परिवर्तन नहीं ला सके तो अब इसकी आवश्यकता भी नहीं रही। यह मेरा तुमको लिखा गया अंतिम पत्र होगा, अतः जो कुछ भी कहना है, आज कह ही डालूंगी। हां तो वर्मा की बात चली थी। एम०ए० उसने ड्रॉप कर दिया था—मेरे ही कारण से, शायद तुम्हें मालूम हो। उसके पत्रों से तंग आकर मैं वी०सी० से मिली थी और उन्होंने उसे बुलाकर स्वयं कॉलेज छोड़ देने को कहा था, वरना वह रेस्टिकेट कर दिया जाता। उसने क्लासेज तो छोड़ दिये थे, पर वह कालेज का चक्कर नहीं छोड़ सका था। सुबह शाम मेरे आते जाते समय फाटक पर मौजूद रहता। कभी-कभी अपनी साइकिल भी मेरे रिक्शा के पीछे लगा देता। पर अब कुछ करना बेकार था, मैंने तंग आकर उसकी नोटिस लेनी छोड़ दी।

पर कुछ दिनों के बाद तो गजब हो गया। मुझे आज भी उस घटना का अफसोस है। पिताजी पर भी कभी-कभी खीज होती है। पर गलती भी वर्मा ने कुछ छोटी नहीं की थी। शायद क्लासेज छूट जाने से खाली वक्त में उसका दिमाग शैतान का घर बन गया था और एक शाम जब पिताजी घर में ही थे, वह मजनू की सी शक्ल बनाये एक पोटली कांख में दबाये ऊपर आ गया था। पिताजी उसे जानते थे, उसे देखते ही मुझे काटो तो खून नहीं, पर पापा का मुंह खून से लाल हो गया था—'तुम यहां ?"

"हां, मैं ही हूं।' वर्मा बोला था। चेहरे पर न कोई शिकन, न कोई घबराहट।

'तुम्हारी हिम्मत यहां आने की कैसे हुई ?'

तो और कहां जाता ?

"यहां क्या रखा है ?" पिताजी का पारा चढ़ रहा था।

यहां ही तो सब कुछ '

शटअप, यू फूल !" पिताजी बीच में ही कडके थे। मैं शरम से गडकर भीतर भाग गई थी। आग की बात मैं नहीं सुन सकी थी, पर जो कुछ हुआ वह बहुत बुरा था। पिताजी का गुस्सा बहुत बढ़ गया था। और उन्होंने वर्मा को इतना पीटा था, इतना पीटा था कि वह दो हफ्ते तक खाट पकडे रहा था। पर मुझे आज भी याद है उस रात मैं जितना रोयी थी, जिन्दगी में अब तक उतना कभी नहीं रोयी। नहीं, वर्मा की पिटाई के चलते नहीं रोयी। उस पोटली में जो चीज लायी गई थी उसके लिए। पिटने के बाद वह पोटली वहीं छोडकर भाग गया था। उसमें एक गुलाबी रंग की खूबसूरत साडी थी। उसे खरीदने में वर्मा को अपने पूरे महीने की ट्यूशन की रकम लगा देनी पडी होगी और फिर पूरे महीने तक उसे

खैर, वर्मा की हालत अब वह नहीं रही। उसने एम०ए० कर लिया है और एक छोटे-से कॉलेज में लेक्चरार भी लग गया है। पर सबसे आश्चर्य की बात यह है कि गत दो साल के अन्दर ही उसने कविता, कहानी और उपन्यास की छोटी-बडी सात किताबें प्रकाशित करा ली हैं और जो कोई भी उसके यहां जाता है उससे बडे तपाक से अपना परिचय सात प्रकाशित और तीन अप्रकाशित पुस्तकों के लेखक के रूप में देता है।

नहीं, यह सब हंसने की बात नहीं है। यह इस बात का द्योतक है कि वर्मा चाहे हमारे और तुम्हारे स्टेण्डर्ड से पागल अथवा सिरफिरा रहा हो, पर उसका आकर्षण मेरे लिए सच्चा था। उसने ये सारी किताबें मुझे प्रेरणा बनाकर लिखी हैं और हरेक की एक एक प्रति मेरे पास भेजी है। मैंने कभी उनको कोई महत्त्व नहीं दिया है और हर किताब को प्राप्त करने के बाद मेरा मन झल्लाया ही है, पर आज सोचती हूं यह सब मेरी गलती ही है।

खैर वर्मा की बातें बहुत हुई, तुम्हें यह सब अच्छा नहीं लगता होगा। इतना लम्बा पत्र पढने का तुम्हें धैर्य कहां? अब तो पहले की बात नहीं जो मेरे हर पत्र के एक एक अक्षर को सौ-सौ बार आंखों से चाटते थे और मेरे हाथों के एक स्पर्श के लिए भी तुम्हें पचास पापड बेलने पडते थे। उस दिन की बात याद आ गई। उस दिन शिवरात्रि थी न? मां ऐसे मुझे

जल्दी बाहर नहीं जान देती, पर तुम्हार कहन पर मैंन बडी मिन्नता के बाद उस राजी किया था तो वह भी साथ लग गई थी। पापा के यटार को तुम्हीं हाक रह थे। ड्राइवर छुट्टी पर था। तुम्हार हाथ की ड्राईविंग म मुझे बडा मजा आया था पर अब उन सब बाता का क्या?

शिव मन्दिर पहुचकर जब मा मन्दिर के सात फेरे लगान म व्यस्त हो गयी थी और हम दोना मन्दिर के दरवाजे के सामने जकेले रह गय थे तुमन मरी दाहिनी कुहनी म चिकोटी काट ली थी—"ऐसा भी क्या ध्यानावस्थित होना? दवता बगल म और ध्यान सामन!"

'हू! बड आये दवता बनने वाले! प्रणाम करा भगवान शकर को, मर समान दबी बाल म खडी करन का मिल गई!" मैं छटते ही बोली थी और इतनी ही सी बात तुम्हार लिए चिनगारी बन गई थी। तुमन मा की अनुपस्थिति और पुजारी की व्यस्तता का लाभ उठा मेरे हाथ का अपने हाथ म थाम लिया था और उसी शकर के दरवाजे के सामने उसी शिव लिंग का साक्षी बना तुम जस मत्र पढते हुए बोल थे—"सच सिरी तुम्हारे बिना जीना बडा मुश्किल है। अब हम कोई नहीं अलग कर सकता एक दूसर म कोई नहीं'

आओ, इस शिवलिंग का छूकर हम कसम खाए कि हम सदा सवदा क लिए एक-दूसरे के' मेरे मुह से निकल गया था और उस समय अनाव बना हम दोना का एक साथ शिवलिंग पर हाथ रखे कसम खाते दखता हुआ पुजारी आज भी हमारी उस पवित्र शपथ का साक्षी है पर जो बात मेरी समझ म नहीं आती वह यह कि तुम पुरुष जो अपनी महानता का इतना ढिंढोरा पीटत हो नमचुच इतने स्वार्थी होत हो कि अपनी प्रतिज्ञाओ और शपथा का चुटकी बजात नजरन्दाज कर जात हो। और अपनी सारी बातें ऐसे भूल जात हो जसे व कभी तुम्हारे मुख म निकली ही नहीं। जब उन किसी मन्दिर म खायी तुम्हारी शपथा का कोई ठिकाना नहीं तो अग्नि का सा ी दे सात फेर लगाकर जिन्दगी भर साथ निभाने की तुम कभी कसम खात भी तो उसका क्या भरोसा होता? आखिर राम भी तो तुम्हारी ही तरह पुरुष जाति के थे न? आग क सात पर लगा अर्द्धांगिनी बनान र जलाया, लका विजय के बाद अग्नि परीक्षा

तब भी जमानुपिक्ता पर उतरने वाले उसी तुम्हारे पुरुषोत्तम न मर्यादा रक्षा का ढाग भर, अपनी गभवती पत्नी का निराधार और निराश्रय छार जगला की खाक छानने का मजबूर कर दिया था न ? आखिर वही पुरुषात्तम तुम पुरुषा का आदर्श है न ? ता तुम मर्दों म क्या आशा की जा सकती है ?

बहुत कटु हो रही हू न ? पर तुम कम मेरी मजबूरी का समझोगे ? बताऊ तुम्हे, तुम नागा के मुटन के बाद मन उसी शिव मदिर की हवनशाला स राख की एक चुटकी ली थी और घर लाटने के बाद जब सब लाग सा गय थ मैंने अपना शृगार किया था तथा आइने के सामने हा उसी राख से अपनी माग भर ली थी। काश ! मुझ मालूम हाता कि जिस राख को मैंने सुहाग सिदूर मान अपनी माग भरी थी वही एक दिन चिता की राख बन मेरे मुह पर कालिख पोत दगी ता मैं तुम्हारी वाना का विश्वास नही करती।

खर अब नही लूगी तुम्हारा ज्यादा समय। बद करती हू यह बकवास। पर एक प्राथना ह तुम्हारा एक फोटो मेरे पास ह उस समय नहीं जानती थी कि यह निरथक भावुकता ह नही ता क्या रखती तुम्हारा फाटा ? और यह भी नही पता था कि म इतनी कच्ची नीम सिद्ध हूगी तुम्हारे लिए वि दा पत्रा के बाद ही तुम इस तरह मौन हा जाओगे। मन समझा कि मैं यह मान जाऊगी कि तुम्हारा अब कोइ अता-पता नही, कि तुम किसी भीषण गालाबारी या एयर एक्शन म नही रहे। भगवान न करे एसा हो, कम स कम मेरे लिए नही तो तुम्हारी उन अनेक मामू-काओ, मासी-चाचाओ और गल फ्रेंडो के लिए जिनकी पलका की साया पाकर तुमने मर खैर, तुम्हारी गतिविधिया की सारी खबर मिलती भी है। तुम्हारी वीरता की चर्चा और तुम्हारे प्रमाशन सम्बधी खबर के साथ अखबारा म जा फाटा निकला था उस ही मैंने काटकर रख लिया था। ड्राइग रूम म शकरजी का एक फोटो टगा था—तुमने दखा ही हागा—उसी म शीशे के अदर उसे एक किनारे डाल दिया था।

रोज सुबह शाम शकर को धूपबत्ती दिखाने के बहाने म तुम्हें धूप-बत्ती दिखाती रहती थी। पता नहीं पिताजी ने कुछ समझा था या नही

पर मा सब कुछ समझ गयी थी—औरत के दिल की बात ता औरत हा ठीक स समझ सकती है ।

किस सनकी की पूजा कर रही हो ? शेखर लौटेगा ?" मा गम्भार हाकर बोली थी 'यह भी अच्छा रहा, शेखर के फाटो को भगवान शकर के साथ लगा दिया । दोना अडभगी । पावती पाच सौ वर्षों तक पीपल के पत्ते चबाती रही तब कही जाकर भगवान पशुपति का पाषाणी हृदय पिघला । तुम्हारी यह ध्रुपवत्ती और तुम्हारे पत्र शेखर को यहा खाच लायेंग ? शेखर का तुम नही जानती । पहाडी धारा भी कही बधकर रहती है री ? शेखर के समान चचल लडके कहीं एक जगह टिके हैं ? भल जाओ उसे मैं तुम्हारे लिए "

मा एक ही साथ बहुत बातें कह गयी थी । मरी आखा म आसू आ गय थ । जानती थी शकर को कलाश से खीच लाना आसान है पर तुम्हें श्रीनगर और लद्दाख स छुडाकर दो चार राज क लिए भी अपने पास पकड रखना असम्भव । मा न मन ही मन कही कुछ ठीक किया है। बटी क कलज का बफ की तरह पिघलत वह ज्यादा नही दख सकती थी। पर यह सब नही चलगा—मैंन कुछ और ठीक किया है ।

वर्मा का लक्चरशिप मिल गयी है सा कह ही चुकी हू । इधर उसने अपनी एक छोटी-सी प्रकाशन-सस्था भी खाल ली है । खान पीन भर कमा रहा है । इधर उसन एक पूरा-का-पूरा उपयास मुझे लकर लिख दिया है । मुझे ही समर्पित भी कर दिया है। डाक से एक प्रति आयी थी, उसी से मालूम हुआ उसकी प्रकाशन-सस्था के बारे म । अपन ही नाम से खोल रखी है। जानती हू । मुझे लेकर कविताए ता लिखता ही रहा है, पर यह पूरा-का-पूरा उपयास । उसके इसी छिछलेपन से तग आकर मैं उससे अलग हुई थी पर अब कुछ और सोचती हू । खुद को जब बिच्छू काटता है तो दूसरे के दद का अदाज होता है । दिल टूटना क्या है, अब जान गयी हू । अब जब अपने दिल को जोडना सम्भव नही तो वर्मा के दिल का ही क्या नही जोड दू ? चौक गये ? सोचते होगे कहा लम्बे चौडे खूबसूरत व्यक्तित्व वाले तुम बडे घर के लडके, ऊपर स मिलिट्री के एक बडे अफसर और कहा सुबह शाम की दो रोटिया के लिए लडकपन स लेकर

आज तक सघपरत बिना मा बाप का, ठिगना सा बद-सूरत वमा ! एक फटीचर कॉलिज का एक फटीचर लेक्चरर !

पर घबराआ नही। मैंन अब बाहर नही भीतर देखना शुरू कर दिया है। वमा बाहर स बदसूरत हागा, भीतर वह मुझस और तुममे—दाना स ज्यादा खूबसूरत है। नही ? तभी ता कालज के दा साल और इधर के तीन साला के बाद भी मर प्रति उसके प्यार म राइ रत्ती भी कमी नही आयी है। औरत का और क्या चाहिए ? प्यार। अपने आकपण, अपन त्याग सेवा और समपण भावना का उचित प्रतिदान। अपने कोमल जजबाता आर बलिदाना का सही मूल्याकन। है न ? और यह सब है वर्मा म। अब मुझे इमम काई सदेह नही। नही ता इतना कुछ टूटन मिटन ठोकर खान के बाद वह भी तुम्हारी तरह किसी हसीना के शाख आचल के साय म मरक गया रहता। न सही कोइ कश्मीरी पहाडी गौरागना दिल बहलाने क लिए बहुत कुछ यहा भी है।

खर, मूल बात ता रह ही गयी। ला फोटा लौटा रही हू तुम्हारा, क्योकि जिस इतन दिना तक पूजती रही उस फाड चीरकर धूल म नही फेंक सकती और न इस अपन बक्स के अन्दर सजाकर रख सकती हू, क्योकि जहा मैंन उस दिन मन्दिर की राख रखी थी और जिसकी पहली चुटकी अपनी माग म सुहाग सिन्दूर समझकर भरी थी वहा भी एक दूसरी चीज आ गयी है—असली सिन्दूर। चौंक गय ? चौकन की बात ही है। वमा ने एक और, और शायद अतिम गुस्ताखी की है। कल की डाक से यह पुडिया आई है। एक चिट म लिखा है मैं तो अब जिन्दगी भर किसी और का सिन्दूर पहनान स रहा, अत अपन हाथो वह सुहाग चिह्न तुम्ह ही भेजकर मैं आजावन सम्बन्ध तुमसे ही "

बहुत बडी गुस्ताखी है न यह ? होगी। तुम ता भइ बडे आदमी हो गय। दा साल लगत न-लगते तुम्हारी वीरता की गाथा गायी जान लगी और तुम्हें सरकार न लेफ्टिनेण्ट से कप्तेन बना दिया। देश की सीमाआ के तुम सजग प्रहरी हो। मैं तो एक नन्ही औरत हू। एक छाटे से शहर के एक अन्ना स मेडिकल प्रक्टिशनर की खीच-खाचकर एम०ए० तक पहुची एक बन्गी बसमझ लडकी। मुझे तुम्हारे कस्मापालिटन नगरा की आधुनिक

मान्यताओं और तकादों का कोई पता नहीं। पर मैं एक बात पूछती हूं। जिस आदमी पर अपने द्वारा खींची सीमा रेखाओं का भी अतिक्रमण होते देख कोई प्रतिक्रिया नहीं होती वह देश की सीमाओं की रक्षा का कुछ समझेगा क्या ? राम भी स्वर्ण मृग के पीछे भागे थे तो सीता को पर सीमा रेखा में बंधना गये थे। और उसी लक्ष्मण रेखा के उल्लंघन के लिए रावण को अपने प्राणों से हाथ धोना पड़ा था। पर यह क्या तो कर गया तुम्हारी लक्ष्मण रेखा का उल्लंघन।

सिरी ???" मैं लगभग चिल्ला पड़ा हूं। नहीं चाहते हुए भी मैं पूरा का-पूरा पत्र पढ़ गया हूं पर अब आगे नहीं पढ़ सकता। पत्र मेरे हाथों से छूटकर नीचे गिर गया है।

मेरी कुर्सी की बांह पर बैठी रत्ना इंडियन कॉफी के होठों से उसका लबालब भरा लाल प्याला छूटकर फर्श पर चूर चूर हो गया है। हिन्दी वह नहीं समझ सकती पर बात की सीरियसनेस वह समझ गयी है।

"व्हाट इज द मैटर स्वीटी ?" वह भौंचक्की-सी हो पूछती है। मैं कुछ नहीं बोलता हूं। कभी का अटककर मैं कुर्सी से उठता हूं। मैं सब कुछ बर्दाश्त कर सकता हूं, पर सिरी को मैं वर्मा के हाथों में नहीं डाल सकता। मैं नहीं जानता कि क्या सी यह कहानी सिरी की कोई चाल है या सच्ची घटना, पर अब मैं किसी भी तरह अपने पुरुषत्व का चुनौती नहीं बर्दाश्त कर सकता। नहीं मैं लक्ष्मण रेखा की मर्यादा को लुटते नहीं देख सकता हूं। इससे पहले कि रावण बनकर वर्मा लक्ष्मण रेखा लांघ जाय मैं सिरी तक पहुंच जाऊंगा। नहीं चाहिए मुझे कभी के रूप में एक और मृग मरीचिका, एक और स्वर्ण-मृग। नहीं होने दूंगा मैं एक और सीता हरण। "सिरी ! सिरी !" मैं लगभग चीखते हुए अपनी गाड़ी की तरफ भागता हूं।

कैप्टेन शेनर हैव गॉन क्रेजी। रत्ना की आवाज आती है, पर मुझे कोई चिंता नहीं। मुझे रत्ना की, उसके रूप-यौवन और उसके हाथों से छलकते प्याले की कोई चिंता नहीं मुझे चिंता है लाहौर के पतन की जिसे मुझे हर कीमत पर रोकना है।

समाधान

तब वह झुंझला पड़ा था और उसे नौकरी से ही नफरत हो आई थी।

पुलिस जीप में अपनी बगल में बैठे वर्दीधारी से उसने एक बार फिर पूछा था—"तुमने ठीक से सुना तो ?"

हां बिलकुल ठीक से। ग्यारह डिक्कू चाहिए जिन्दा या मुर्दा। मुर्दा हों तो बेहतर। गोली सीधे छाती के पार होनी चाहिए। वर्दीधारी ने गम्भीर होकर कहा और कमर में लटकते रिवाल्वर पर अपनी दाहिनी हथेली फेरी।

'पर ऐसा क्यों ?" उसने जो मजिस्ट्रेट था और गोली को उसी के आदेश से चलना था दूसरा सवाल किया। उसके मुंह पर हवाइयां उड़ रही थीं और उसकी टांगें जांघों के ऊपर तक कांप रही थीं। वह अन्दाज नहीं लगा पा रहा था कि यह भय डिक्कुओं के तीर-कमानों का था अथवा उसकी अन्तश्चेतना का यह मूक विद्रोह था जो उसके बाहरी अवयवों को शून्य सा करता प्रकट हो रहा था।

'यह इसलिए कि यह फिरंगी कमांडर अपने मिथ्या स्वाभिमान की रक्षा कर सके। ग्यारह आदमियों के सिर कटवाकर यह अपनी नाक को कटने से बचाना चाहता है। पुलिस हेडक्वार्टर्स में पिछले दिनों उसकी बड़ी छीछालेदर हुई है। एडिशनल आई०जी० थामस ने गर्ज कर कहा था। ऐसे अधिकारी से तो थाने का दरोगा अच्छा जो अनगिनत डिक्कुओं को अपना जेब में ही मेंढा मानता है। इस साम्प्रदायिक दंगे की नमक मिर्च मिली कहानी प्रिंसिनियों की सामानों तक पहुंच चुकी है और उन्होंने ऐसे सारे फिरंगी अधिकारियों को वापस बुलाने तक की बात कही है जो दंगों के दमन में प्रभावकारी सिद्ध नहीं होते।"

पुलिस अधिकारी की बात सुनकर उसने कुछ देर तक अपने अन्दर

कुछ हिसाब किताव बैठाया और फिर वाला, 'पर इतन डिक्कू एक साथ मिलेंग वहा ? वे हमारी गोलिया खाने के लिए अपनी छातिया उधार वठ हाग क्या ?'

नही मिलें ता फिर हम भी किसी थानेदार की हवालात के हवाल होंग और हमको भी कोई मनचला दारोगा अपन तहखान म जिन्दा दफन कर दगा। इस पगल फिरगी की हुकुमउदूली की यही सजा है। यह नौकरी नही नेता वाले अधिकारिया की जान के साथ खिलवाड़ करना उनक सस्पेंसन और डिसमिसल स उम ज्यादा उत्तेजक लगता है।

'यस, एलेवेन। ह्वेन आई स एलवन, आई मीन एलेवन।" फिरगी एस० पी० की आवाज अब भी उसके काना म गूज रही थी,। प्राड्यूम एलेवन डिक्कूज डेड आर एलाइव प्रेफरेवली डेड ।'

एस डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट जासन भी वहा बठा था आर मजिस्ट्रेट हान के चलत एस० पी० क आदश का उतना वजन उसक लिय नही था। पर डी० एम० की चुप्पी ही इस आदश म उसकी सहमति की द्यानक थी। अब उसके पास सिवा इसक कोई चारा नही था कि ग्यारह डिक्कुआ की लाशें, शाम होने तक सर्किट हाउस म प्राडयूस कर, क्याकि डिक्कू ता पुलिस की गाडी देखते ही भाग खड़े होत ह। सिवा इसक कि भागती भीड पर गाली मारी जाय, ग्यारह डिक्कुआ को प्रोड्यूस करन का कोई और उपाय नही था और फिर उसे इसम काई सन्देह नहीं था कि यदि वह दा चार जिन्दा डिक्कू भी इन ग्यारह डिक्कुआ म पकड ले जाय ता यह सिरफिरा फिरगी उन्हें जिन्दा नही छोडेगा। उन्हें वह तडपा तडपाकर मौत के घाट उतार देगा। पहले उनके तलवा म काटिया ठुकवाएगा, फिर आखें निकलवाएगा और हाथा और पैरो का धड स अलग करन के वाद भी यदि प्राण कही अटके नजर आयेंगे तो बूटदार पैरो से उनकी छातिया रौंद उन्हें बाहर कर दगा। ऐसी दर्दनाक मौत स ता रायफल की गोलिया की मौत कई गुनी अच्छी।

कोई पन्द्रह दिना से बिहार के छाटा नागपुर का यह पठारी इलाका साम्प्रदायिक दगे की आग म जल रहा था। हिन्दुआ और मुसलमानों क बीच इस इलाके म अक्सर ठन जाती थी। पर अबकी बार के दगे म

आदिवासी भी हिंदुओं की ओर से कूद पड़े थे। अहिंसावादी हिंदुओं से भिड़ना मुसलमानों के बायें हाथ का खेल भले ही रहा हो पर तीर-कमान से लैस खूंखार आदिवासी उनके लिए बहुत भारी पड़ रहे थे। मुसलमानों के कई गावों को उन्होंने घेर घेरकर जला दिया था और घर से भागते भयभीत लोगों को अपने तीरों के अचूक निशाने से चूहे बिल्लियों की तरह बींध दिया था। सरकारी अधिकारियों ने जब इनके खिलाफ जेहाद बोला तो वे उनके भी विरुद्ध हो गये। सरकारी गाड़ियों को देखते ही वे भूखे शेर की तरह टूटते और उन्हें विष बुझे तीरों का निशाना बनाने दौड़ पड़ते। रायफलधारी सिपाहियों से लैस होकर भी कोई मजिस्ट्रेट या पुलिस अधिकारी जीपों में बैठ पट्रोलिंग तक के लिए निकलने को तैयार नहीं होता। पता नहीं कब किधर से कोई सनसनाता फौलादी तीर जीप के शीशे को तोड़ता हुआ उनकी छाती की हड्डियों को भी तोड़ दे।

इन्हीं आदिवासियों को फिरंगी अधिकारी डिक्कू नाम से पुकारते थे। यह बात दूसरी है कि अब आदिवासी ही गैर आदिवासियों को डिक्कू सम्बोधन देने लगे हैं।

तो ग्यारह डिक्कू चाहिए?' वह बड़बड़ाया। उसके भीतर एक भयानक संघर्ष चल रहा था। ग्यारह निर्दोष डिक्कुओं को ढूंढ ढूंढकर शिकार करने की कल्पना पर ही उसके अन्दर एक भयानक हलचल मच गई थी और ग्लानि से उसका मन भर आया था।

उनकी जीप लगातार बढ़ती जा रही थी और अब वह स्टेशन रोड पर आ गई थी। यहां से एक सड़क शहर के मेन मार्केट से होते हुए डिक्कुओं की एक घनी बस्ती तक आती थी। बहुत सम्भव था वहां उनका शिकार मिल जाता—ग्यारह डिक्कू जिन्दा या मुर्दा। पर उसकी चिन्ता बढ़ती जा रही थी।

इस समय जाड़े की दोपहरी ढल रही थी। दो-एक घंटे में ही अंधकार घिर जाता और एक डिक्कू का भी हाथ आना कठिन होता। आज पन्द्रह दिनों से शहर में नाइट-कर्फ्यू लागू था। दिन ढिलते ही पूरा शहर अपने घरों की चाहरदीवारियों के भीतर छिप जाता था। पर उसे तो अपने मिशन को पूरा करना था। ग्यारह डिक्कुओं के साथ यदि वह शाम तक

सर्किट हाउस नहीं पहुचता तो न तो उसकी खैर थी न उसके साथ के पुलिस अधिकारी की। एक उड़ती नजर उसने अपनी बाईं ओर बैठे उस मोटे पुलिस अधिकारी पर डाली। वह उससे भी अधिक भयभीत मालूम पडता था। उसका अलकतरे की तरह काला चेहरा कागज सा सफेद पड़ा हुआ था और उसका कलेजा धौंकनी की तरह चल रहा था ऐसा कि थोड़ा ध्यान देने से वह उसकी आवाज तक सुन सकता था।

आप बहुत भयभीत है ?' उसने उसे बातों में फंसाना चाहा।

'मेरे घर मेरे और पत्नी के सिवा कोई नहीं है। मेरी दूसरी शादी को हुए अभी मुश्किल से दो साल हुए हैं।' वह रोने रोने-सा हो आया।

पर इसका क्या सबूत है कि हम मारे ही जायेंगे ?" वह जो खुद भी डरा हुआ नहीं था उसे ढाढस बधाते हुए बोला।

'जो हो।' उसने धीरे से कहा और फिर चुप हो गया। शायद वह बात आगे नहीं बढ़ाना चाहता था। डिकैतों के हाथ अथवा उनसे बच भी गया तो फिरंगी एस० पी० के हाथ अपनी प्राय निश्चित-सी मृत्यु की बात से वह अपने ध्यान को यथासंभव अलग रखना चाहता था।

मैंने एक बात सोची है। उसने बात बदली।

क्या ? वर्दीधारी के चेहरे पर आशा की किरण चमकी।

बताता हू, उसने आरम्भ किया, पर इसी समय उनकी जीप स्टेशन के सामने पहुंच गई और प्लेटफार्म से आते शोर गुल ने उनका ध्यान बांट लिया। 'पहले भीतर देख लें। कोई खास बात लगती है।" उसने जीप रुकवाते हुए कहा।

नहीं, नहीं यहां रुकने की जरूरत नहीं। वर्दीधारी घबड़ाकर बोला।

क्या ?' उसने पूछा। उसे थोड़ा क्रोध भी आया। यह खुल्लमखुल्ला हुक्मउदूली थी। पर इस समय वह कुछ कर भी नहीं सकता था।

'वहां डिकैत होंगे। इतने भारी शोर गुल का कोई और अर्थ नहीं हो सकता।'

'होंगे तो और अच्छा। हमारा मिशन फुलफिल हो जायगा।' उसने समझाना चाहा।

'मैं इस आमने-सामने की मुठभेड़ के लिए तैयार नहीं हूं। भागने

डिकुआ म ा चार का गाली क घाट उतार ा कुछ आर बात है सैकडा की सख्या वाली डिक्कू सेना से चार रायफलधारी सिपाहियों के बल पर पार पाना कुछ और। आप चाह तो अकेले जा सकते है। वर्दी धारी न अपना निश्चय सुनाया।

अकेले ? क्या मतलब ? ' वह असमजस म पडकर बोला।

मतलब यह कि पीछे बैठे इन रायफलधारियो को भी मैं आपके साथ नहीं जाने दूगा, क्योकि तब मैं अकेला और असुरक्षित हो जाऊगा।" वर्दी धारी बोला और आगे की सीट फादकर सिपाहियो के बीच जा बैठा।

अब उसके पास सिवा इसके कोई उपाय नहीं था कि वह अकेले ही उस आर जाए।

'पर आप क्या इस आग म कूदने के लिए व्यग्र है ? यह हमारी ड्यूटी में नहीं आता। हम तो ग्यारह डिक्कू चाहिए, जिन्दा या मुर्दा। उनके लिए एक डिक्कू-टोली ही काफी है।" पुलिस अधिकारी ने अपना अन्तिम अस्त्र छोडा। पर अब केवल उसकी आवाज ही सुनाई पड रही थी। वह स्वय रायफलधारियो के भीतर धस कर अपने को पूरी तरह छिपा चुका था।

'ड्यूटी मे हो या नही, पर हमारी कुछ नैतिक जिम्मेदारी भी होती है। एक मजिस्ट्रेट होकर मैं इस तरह गैर जिम्मेदारीपूर्वक यहा से भाग नही सकता।' कहकर वह स्टेशन की ओर बढ गया। ड्राइवर से जीप की चाबी लेकर उसने अपने पाकेट मे रख ली, ताकि उसकी अनुपस्थिति मे यह कायर आफीसर ड्राइवर को डरा-धमका कर गाडी के साथ ही न भाग जाए। अकेले म उसे खतरा भी कम दिखाई पडा। सिपाहियो के साथ जाने पर उसके पहचान जाने का भय था। पर अकेले जाने म उसे अधिक से अधिक एक यात्री मात्र समझा जा सकता था। एक अधिकारी समझ कर डिक्कुओ की सेना के उस पर टूट पडने की सभावना इसम कम थी।

स्टेशन की हालत भयानक थी। प्लेटफार्म पर दगा-स्पेशल लगी थी। उसम भरकर उन लोगो को सुरक्षित स्थानो पर ले जाया जा रहा था, जो या तो दगे म घायल हुए थे अथवा जो अपने घर-द्वार से पूरी तरह उखड चुके थे। सैकडो की सख्या म डिक्कू टिड्डी दल की तरह इस ट्रेन को घेरे खडे थे। विचित्र और रोमाचकारी दृश्य था यह। कुछ डिक्कू

तीर कमान से लस हो इनर सिग्नल पर जा चढ़े थे तो कुछ स्टेशन की छत पर धनुष-बाण चढ़ाए बैठे थे। कुछ, इंजन में घुस ड्राइवर की बगल में जा खड़े हुए थे तो कुछ ने गार्ड या कोच में कब्जा कर रखा था। शेष डिक्कू दरवाजा और खिड़कियों की राह लोगों को खींच-खींच बाहर कर रहे थे ताकि खुले में उन पर ठीक से कहर बरसाया जा सके।

उसके होश उड़ गये। वह जीप के पास वापस आया और ड्राइवर से पीछे चलने को बोला।

'पर क्यों?' वर्दीधारी, जो उसे लौटता देख आगे की सीट पर आ गया था, बोला।

'स्टेशन की हालत बहुत बुरी है। थोड़ी भी देर का मतलब है हजारों का बलिदान। डिक्कुओं ने दंगा स्पेशल को घेर रखा है। हम पुलिस हेडक्वार्टर्स चलकर अतिरिक्त फोर्स लेना होगा और तब इन डिक्कुओं से जूझना यह हमारा काम नहीं है।' वर्दीधारी अड़ गया।

'पर कम से कम पुलिस हेडक्वार्टर चलकर हम स्वयं उन्हें इस स्थिति से तो अवगत तो करा देना चाहिए।'

'इतने से काम नहीं चलेगा। कोई भी इस आग में कूदने नहीं जायगा। वे हमें ही इसमें झोंक देंगे। बहुत होगा तो चार के बदले आठ रायफल धारी साथ कर देंगे।'

"क्या फर्क पड़ता है? इतने लोगों की जान तो बच जायगी?' उसने तर्क दिया।

'मुझे अपनी जान की कीमत पर दूसरों की जान बचाने की नहीं पड़ी है। हम सीधे डिक्कू टोलों जायेंगे और ग्यारह डिक्कुओं को लेकर जायेंगे, जिन्दा या मुर्दा।' वर्दीधारी ने इतना कहने के साथ ही जीप की चाबी उसके हाथ से झटक ली और उसे ड्राइवर को थमाते हुए बोला, 'जैसा मैंने कहा है वैसा ही करो। छोड़ दो इन मैजिस्ट्रेट साहब को इन डिक्कुओं से अकेले निबटने को, अगर उनकी यही इच्छा है।'

उसके पास इसके सिवा कोई और चारा नहीं था कि वह भी जीप में बैठ जाये। अवश्य ही इस बीच वर्दीधारी ने ड्राइवर और रायफल

घारिया को भी फोड लिया था। डिक्कुआ के तीरो की फौलादी नाक की कल्पना स आजकल सबको पसीना छूटन लगता था। कोई भी थाडी अतिरिक्त जिम्मेवारी लेन को तयार नही था।

"ठीक है सीधे ही चलो। उसन स्टेशन से ही फोन द्वारा हेडक्वाटस को सूचना द दी थी। पर स्वय जाकर स्थिति की गम्भीरता समझान का अथ कुछ और था। लेकिन इस वर्दीधारी से बहस बेकार थी।

जीप आग बढी तो इस बीच काफी देर हो चुकी थी। आधे घटे म डिक्क टोली पहुच गए। गाडी बाहर ही राक लेनी पडी।

'क्या इरादा है? उसन वर्दीधारी से पूछा।

"क्या मतलब? वह बोला। डिक्कुओं से मुठभेड की आशका से उसका चेहरा एक बार फिर सफेद होने लगा था।

'डिक्क चाहिए न?'

"निश्चित ही ग्यारह डिक्कू, जिन्दा या मुर्दा। वर्दीधारी हकलाया। वह खाली हाथ लौटकर फिरगी एस० पी० के हाथ बेमौत मरना भी नही चाहता था।

"तो क्या करना होगा? अब तक उसके दिमाग की योजना साफ हो चुकी थी। उसने वर्दीधारी के चेहरे की तरफ देखा।

"मुझे कुछ नही सूझ रहा है। बिना डिक्कुआ से मुकाबला किए काम चल जाय ता अच्छा।

मेरे दिमाग म एक याजना आई है। मैं पहले ही कहना चाहता था, पर तब स्टेशन आ गया और हमारा ध्यान बट गया। उसने कहा।

'कौन-सी योजना? वर्दीधारी के चेहरे की सफेदी म कुछ कमी आई।

"डिक्कुआ को तो हम जिन्दा नही पकड सकते।

"कतई नही और इसमे खतरा भी है।

तो हम निहत्था और निर्दोषा पर गोली चलानी पडेगी?

"हा और यह सी० आर० पी० सी० क प्रावधाना के खिलाफ ही होगा। उत्तेजित और हिसक भीड का तितर बितर करने क लिए ही गाली चलाई जाती है। लोगो के घरा मुहल्ला म घुस कर गोली मारत चलना

कानून विरुद्ध है। वर्दीधारी का दिमाग अकस्मात तेजी स काम करन लगा था।

और एस भी डिक्कुआ न हमारा अथवा सरकार का कुछ बिगाडा तो नहीं है। दग म दानो पक्षो का दोप बराबर है और डिक्कू तो इस लिए सरकारी अधिकारियो के खिलाफ हो गय ह कि इस फिरगी सरकार का दमन चक्र एकतरफा चल रहा है।

'ठीक कहा आपन, पर हम बिना डिक्कुआ के लौट भी नही सकते। फिरगी हमारा ही भुर्त्ता बना देग। वर्दीधारी की आखा म फिर भय झाकन लगा था।

'नही हम डिक्कुआ के साथ लौटेंग। उसन वर्दीधारी क चेहरे की ओर देखते हुए कहा।

'जिदा ?

"नही, मुर्दा। पर हम गोली नही चलायेंगे। आओ मर साथ। उसने कहा और जीप दूसरी तरफ माड दी गयी।

कितन डिक्कू ? शराब के नशे म धुन फिरगी एस०पी० चिंघाडा। रात दस बजे तक व सरकिट हाउस पहुच चुके थे।

ग्यारह डिक्कू। उसन जवाब दिया। वर्दीधारी उसके पीछे खडा था। आशका मे उसके पैर काप रह थे।

वेल डन, वल डन। हैलो जॉनसन, कम ऑन। द हैव प्रोड्यूस्ड एलेवन डिक्कूज। आल डेड। उसन कलक्टर को आवाज दी।

"एलेवन डिक्कूज। आल राइट। कितनी गोलिया चली ? एस०पी० आगे बाला।

'केवल ग्यारह मर ! उसन जवाब दिया। वर्दीधारी की टाँगें फिर नीचे स ऊपर तक काप गई।

"ऑनली एलेवन गोलिया एण्ड एलेवेन डिक्कूज किल्ड। वल डन। जॉनसन कसे बहादुर हैं हमारे अधिकारी। एलेवेन गोलिया एण्ड एलेवेन डिक्कूज। उतार तो इन्हें गाडी स। रख दो पोर्टिको के नीचे। एलवेन

राउंडम एण्ड एलेवन डिस्वंज वाट्।

सिपाहियों की मदद से ग्यारह लाशों को पाटिका के अपेक्षाकृत अंधेरे स्थान में डाल दिया गया। वर्दीधारी का कलेजा जोरों से धड़कने लगा था। वह जीप की अगली सीट पर छिप कर बैठ गया।

नशे में डगमगाते फिरंगी एस० पी० और डी० एम० ने बूट की ठोकर से लाशों को अलग से ही चिक किया—'वेल डन।

'ह्यर इस यार पुलिस आफिसर?' एस० पी० गाड़ी के पास लौटते हुए बोला। वर्दीधारी कांपते हुए सामने आया। दोनों पैरों को जोड़कर अटेंशन की मुद्रा बनाई और एक जोरदार सलामी देते हुए बोला—'यस सर।'

कहां है खाली कारतूस?

वर्दीधारी ने ग्यारह खाली कारतूस अपने पाकेट से निकाल हथेली पसार दी।

वेल डन। अब ले जाओ इन्हें और दफन कर दो किसी दूर के कब्र-गाह में ताकि इनके मरने की किसी को कानों-कान खबर नहीं हो। एस० पी० बोला और वे लाशों को जल्दी जल्दी जीप में लाद वहां से चलते बने।

"अब जल्दी से इन्हें डाल दो उन्हीं स्थानों में जहां से इन्हें निकाला था कब्रगाह के पास पहुंच उसने वर्दीधारी और सिपाहियों की ओर देखकर कहा, "अगर कल के दंगे में इतनी संख्या में डिक्कू नहीं मरे होते तो पता नहीं आज हम पर क्या बीतती?'

'वेल डन सर, वेल डन। आपकी बुद्धि का मैं लोहा मान गया। मुझे तो डर था कि कहीं वे गालियों के निशान, डिक्कुओं की छाती पर नहीं ढूंढने लगें। वर्दीधारी जो अब पूरी तरह प्रकृतस्थ हो चुका था बोला।

मैं जानता था, रात के दस बजे तक वे दोनों फिरंगी शराब के नशे में धुत होंगे और बाकी होश हवाश वे ग्यारह डिक्कुओं के मारे जाने की खुशी में खो देंगे। और फिर हवाई फायर करा ग्यारह खाली कारतूस भी तो मैंने तुम्हारे पास रखवा लिए थे। उसने कहा और कब्रगाह की ओर एक हसरत भरी नजर डाल जीप पर जा बैठा।

●

अभिलाषा एक अद्‌द्‌ औरत की

अभी-अभी मैं रीता के अग्नि सस्कार स लौटा हू । जाह्नवी क पवित्र तट पर रीता के पार्थिव शरीर का पच महाभूता क हवाले किया था उसक पिता न । विचित्र लग रहा था मुझे उस समय । किसी आत्मीय के दाह-सस्कार म श्मशान घाट जाने का वह पहला ही अनुभव था । रीता का सुदर, गारा शरीर जिसकी तुलना कभी हम हाथी दात स करत नही थकते थे, सूखी लकडियो के ढेर पर निस्पद पडा था । सफद कफन स झाकत उसके पैर के दाना तलव अब भी गुलाब की पखुडिया स लग रहे थे । चेहर के ऊपरी भाग स भी कफन हट गया था और जो कुछ दिखाई पडता था वह मुझे राजीव की उस उक्ति की याद दिला रहा था जा रीता को पहले-पहल देख कर उसक मुह से निकली थी ।

उस दिन नगर के बडे मदान म स्वतन्त्रता दिवस क अवसर पर सरकारी परेड आयोजित थी । राजीव और मैं पहले ही वहा गये थे । थाडी दर बाद रीता अपन पिता डा० चौधरी के साथ आती दिखाई पडी । क्या सयाग है कि रीता न उस दिन भी श्वत वस्त्र ही धारण कर रखे थे । अगस्त की उस सुबह जब हवा म न विशेष गर्मी थी न विशष ठडक, रीता एक श्वत सिल्केन साडी और मचिग ब्लाउज मे डा० चौधरी के आग-आगे चली आ रही थी । उसके दूधिया रग पर यह परिधान खूब फब रहा था और सीधी छडी-सी पाच फुट, पाच इच लम्बी रीता, उस मदान म सहसा उतर आई किसी स्वग सुदरी सी लग रही थी ।

यह वीनस कहा से आ गई ! राजीव ने उस देखत ही कहा था और दो क्षण के लिए निर्निमेष हा गया था ।

'ता तुम्हारा कवित्व उमड ही पडा मैंने राजीव को टोका जिसे टूटी फूटी कविताए लिखन का भी शौक था—' यह वीनस नही अपने डा० चौधरी की लडकी है रीता । वही स्थानीय बडे हास्पिटल के सुपरिटेंडेंट

डा० चौधरी। देखो वे उसके पीछे पीछे आ रहे हैं।

तो यह डा०चौधरी की लड़की है। इतनी खूबसूरत!' उसने आश्चय प्रकट किया था और हम समारोह में व्यस्त हो गए थे। प्रमण्डल के आयुक्त ने तिरंगा फहराया था। पुलिस एवं एन० सी० सी० के जवानों की सलामी ली थी और हम सब घर लौट आए थे।

डा० चौधरी को मैं बहुत दिनों से जानता था। आज से बारह वर्ष पूर्व एक बार एक ही स्थान पर हमारी पदस्थापना हुई थी तब मैं असिस्टेंट इंजीनियर लगा ही था और डा० चौधरी सिविल असिस्टेंट-सर्जन के रूप में मेरे ही मकान की बगल में आ गए थे। डा० चौधरी की उम्र मुझसे बहुत अधिक थी और वे अब तक दो पुत्रियों और तीन पुत्रों के पिता भी हो चुके थे। रीता चौथे पर थी। उस समय उसकी उम्र सात आठ वर्षों की रही होगी पर उसी समय से उसकी तीक्ष्ण बुद्धि का लोहा हम मानने लगे थे। स्थानीय पब्लिक स्कूल में वह अपने क्लास में ही नहीं, पूरे स्कूल में फर्स्ट आती थी और पूरे स्कूल के बच्चे उसके सम्मान में समारोह कर उसे फूल मालाओं और उपहारों से लाद देते थे। रीता स्वभावतः पूरे मुहल्ले का आकर्षण थी। रूप और गुण का ऐसा सम्मोहक सम्मिलन विरल ही दिखाई पड़ता है। मुझे वह 'अंकल' कह कर बुलाती थी और अपने होम टास्क में सहायता लेने अक्सर मेरे पास पहुंच जाती थी।

बड़ी होकर तुम क्या बनोगी रीता?' एक बार मैंने उससे पूछा था।

"औरत।' उसने गम्भीरता से कहा था पर मैं हंस पड़ा था।

"बड़ी होने पर तो सभी लड़कियां औरत और लड़के मर्द बन जाते हैं, मेरा मतलब नौकरी से था। आफिसर, प्रोफेसर, इंजीनियर या ...।' मैंने बात साफ करनी चाही।

'मैंने कहा न मैं मात्र औरत बनूंगी अंकल।' औरत की शोभा मात्र औरत बन रहने में है। इंजीनियर, आफिसर या प्रोफेसर बन कर वह और चाहे जो बन जाय, एक औरत कहां रह पाती है?' सात-आठ वर्ष की रीता का यह तर्क सुन मैं दंग रह गया था और आज कुछ क्षण पूर्व,

जब मात्र चौदह वर्षों बाद उसी रीता का शव सामने की चिता पर धू धू कर जल रहा था तो मैं सोच रहा था कि क्या मिला रीता को मात्र औरत बनकर ? इससे तो अच्छा था कि एक औरत के साथ साथ वह कुछ और भी बन गई रहती तो आज यह दिन उसे नहीं देखना पड़ता।

औरत बनी थी रीता पूरी तरह। बी० एस० सी० म उसने टाप किया था और आगे पढने से साफ इन्कार। आई० ए० एस० म बठने का भी सुझाव दिया था कुछ लोगो ने पर रीता ने कोई रुचि नहीं दिखलाई थी इसम, क्योंकि वह एक औरत बनने की राह पर चल पडी थी। एक समर्पित औरत।

डा० चौधरी ने रीता का मन जानने के लिए मुझे प्रेरित किया था— "तुम तो उसे बचपन से जानते हो। जरा पूछो उसका क्या विचार है। मैं चाहता हू अब उसकी कहीं शादी कर दू। पता नहीं इस बात के लिए भी वह तयार होगी या नहीं ?"

"वह अवश्य तैयार हो जायगी।" मैंने कहा था।

"ऐसा कैसे तुम कह रहे हो ?" डा० चौधरी ने आश्चर्य से पूछा था।

"जसे भी कह रहा होऊ पर आप देखेंगे वह शादी के नाम पर आना कानी नहीं करेगी और वह एक सफल पत्नी भी सिद्ध होगी।"

पर इसके पूर्व कि मैं रीता से बातें करता, रीता ने ही एक शाम मुझे धर पकड़ा था— "अकेले एक सलाह लेनी है आपसे।"

"क्या ?" मैं इस अप्रत्याशित प्रस्ताव से थोड़ा सहमा था।

"मैं शादी करना चाहती हू।"

"किससे ?"

"राजीव से।" उसकी शादी की बात पर मुझे आश्चर्य नहीं हुआ था, पर राजीव से शादी की बात ने मुझे अवश्य आश्चर्यचकित कर दिया था।

इस बात का पता तो मुझे बाद म चला कि उसका बीजारोपण उसी दिन हो गया था जिस दिन रीता के रोमांचकारी रूप ने राजीव की आखों को बाध लिया था। उस दिन से चुप नहीं बैठा था वह। मडिकल के

अंतिम वर्ष में था वह उस समय। और रीता बी० एस० सी० में प्रवेश कर चुकी थी। हम-पेशा होने के चलते डा० चौधरी से उसकी घनिष्ठता बढ़ती गई थी और इसका भरपूर लाभ उठाया था उसने रीता का मन जीतने में।

राजीव शायद रीता के जीवन का पहला ही पुरुष था—रीता जो अपने नारीत्व का सम्पूर्ण अर्घ्य लिये पहले से ही उस किसी पर उसे न्योछावर कर देने को प्रस्तुत थी जो उसे मात्र एक औरत के रूप में ग्रहण कर, एक पुरुष का पूरा प्यार दे सके। लड़कपन से ही पढ़ाई लिखाई का समर्पित रीता ने दुनिया का छल प्रपंच नहीं सीखा था और ऐसी हालत में बहुत आसान था राजीव के लिए अपना उल्लू सीधा कर लेना।

'राजीव तुम्हें पसन्द है?' मैंने बात आगे बढ़ाई थी।

हां। उसने सहमति में सिर हिलाया था।

क्यों?'

क्योंकि वह मुझे पसन्द करता है।

"बस?' मैंने पूछा था और मुझे फिर याद आई थी बारह वर्ष पूर्व की रीता की बात कि वह मात्र औरत बनना चाहती है और कुछ नहीं।

'बस नहीं तो इससे अधिक एक औरत को चाहिए ही क्या? एक प्यार करने वाला पति मिल जाय जिस पर वह मन प्राण से न्योछावर हो जाय, उसकी प्रगति की प्रेरणा और उसके एकाकीपन का सहारा बन जाय इससे अधिक उसकी सार्थकता ही ।'

तुम्हारी भावुकता अभी भी वैसी की वैसी बनी हुई है रीता। दुनिया इतनी सरल नहीं जितनी तुम समझती हो मैंने उसे बीच में टोका था अभी तुम्हारी उम्र ही क्या है थोड़ा और रुक जाओ और नहीं तो एम० एस० सी० ही कर लो, फिर शादी की बात पर विचार किया जायगा।

नहीं मैं इसमें विलम्ब नहीं कर सकती। राजीव रुकने को तैयार नहीं।

पानी सिर के ऊपर से गुजर चुका था अब इस सम्बन्ध में कुछ भी करना कठिन था। रीता की जिद से मैं अच्छी तरह परिचित था। उसने

जा ठान लिया उसे करके ही रहगी, फिर भी मैंने अतिम अस्त्र छोडा था— राजीव को तुम ठीक स जानती हा ?

जितना आवश्यक है जान गई हू।' उसन विश्वासपूवक कहा।

शायद नही जान पाई हो। राजीव और तुम दो ध्रुवो के मध्य हो। तुम्हारी रुचिया विपरीत है। तुमन घर क आगन और कालेज-स्कूल के क्लास रूमा से अधिक कुछ जाना नही। राजीव मॉडन है अल्ट्रा माडन। तुम्ह कत्थक और भारत नाटयम तक म परहेज है वह बाल और कबरा डामा का शौकीन। तुम हर सुबह मदिर क शिव लिग पर जल धार उडेलती हा और वह हर शाम क्लबो म व्हिस्की और बियर का आचमन करता है। नही चन पाओगी तुम उसके साथ, वह जीवन की तथाकथित दाड म बहुत आग भाग चुका है।'

'मरा प्यार उस पीछे खीच लेगा। मरा आकषण उसके परा म अगला बन कर अड जायगा। नही भाग पाएगा राजीव मुझसे दूर, आप निश्चित रह अकल।"

'यह कुछ नही होगा, रीता ! तुम राजीव का नही जानती हो। वह एस रग म रग चुका है जिस पर काई और रग चढ नही सकता।'

और आप प्यार का नही जानत है अकल।' रीता न खीझ कर कहा था और मै आसमान से धरती पर आ गया था।

'क्या कहा रीता तुमने ?' मैं सकपका कर बोला था।

यही कि न आप औरत को जानत है न प्यार का। यही होता तो पैंतीस वप की इस पक्की उम्र तक आप क्वारे नही पडे रहते। प्यार कही पर कोई बुराई नही दखता। अगर मरे प्यार मे, मरे अन्दर की औरत म, कुछ भी शक्ति हुई तो राजीव वह नही रहेगा जो अभी है। मेरा निणय अटल है। मुझे आपसे कोई सलाह नही लेनी अकल मैं आपक माध्यम से, मात्र अपना निणय अपन पिता जी तक पहुचाना चाहती थी।'

काई नहीव दल पाया रीता के निणय को, न म न डा० चौधरी। पर, रीता भी नही बदल पाई राजीव को और उसका सबस बडा सबूत है रीता का चिता पर जलता शरीर जिसे अग्नि का स्पश देन भी नही आया राजीव।

राजीव की अन्तिम झलक मिली थी मुझे उसी सरकारी अस्पताल के बाहरी पोर्टिको म जहा रीता की अर्थी सज रही थी। राजीव इसी अस्पताल म डाक्टर लग गया था दो वर्षों से और इसी अस्पताल म आज से एक सप्ताह पूर्व भर्ती हुई थी रीता। उस भर्ती भी राजीव न ही कराई था। यह सयोग ही था कि रीता के अन्तिम दिनो म म उसके साथ हो सका और जिस नाटक के मनहूस आरम्भ का मैंने देखा था उसक दुखद अन्त का भी साक्षी बन सका।

डा० चौधरी और मैं इधर दो शहरो म स्थानान्तरित हो चुके थे। व एक 'काल-बल्ट' म चीफ मेडिकल आफिसर लग चुके थ और मैं राजधानी म एक बडी जगह पर आ गया था। रीता उनकी इकलौती सन्तान थी और उसकी शादी के बाद वह पूर्णतया निश्चित हो चुके थ। यहा तक कि इधर कुछ दिनो से हम लोगो के मध्य पत्राचार भी बन्द सा था।

वही डा० चौधरी जब एक शाम अकस्मात मेरे यहा पहुचे तो मैं थोडा आश्चय चकित हो गया। पर दूसरे ही क्षण उनके उदास और साथ ही आवश्यकता से गभीर चेहरे ने मेरा ध्यान आकृष्ट किया और इसके पहले कि मैं कुछ पूछू व बोल पडे— 'रीता का बुरा हाल है रमेश।

'क्या मतलब ?' मैं आसमान से गिरा और एक क्षण को मेरे सामने नाच गई रीता की सगमरमरी मूर्ति, जिसे दो साल पूर्व शादी की वेदी पर राजीव के साथ आग के फेरे लगाते मैंने अंतिम बार देखी थी।

'वह बुरी तरह बीमार है। डा० चौधरी की आखो म आसू आ गए अपना एक मात्र सन्तान के दद था, जिस पर उन्होंने अपने जीवन की सारी कमाई उडेल दी थी, व अपने भीतर छिपा नही सके और बच्चो की तरह फूट पडे। मने पहले-पहल ध्यान से देखा डा० चौधरी अब काफी बूढे लग रहे थ। रिटायर होने की उम्र भी शायद पहुच चुकी थी। इस समय यह वज्रपात उन पर नही होना चाहिए था। कुछ रखा भी नहा था उन्होंने अपने पास। क्या कुछ नही दिया था इस शादी म उन्होंने रीता को ? उसकी दिवगत मा के सभी कीमती आभूषणो के साथ-

साथ, फ्रीज कार, टी० वी०, पलग सोफासेट और उसके ऊपर कई हजार की नकद राशि भी उन्हे खर्च करनी पडी थी राजीव के लिए और राजीव भी ऐसा कि उसकी माग शादी के बाद भी बन्द नही हो पा रही थी। पूरी तरह पापर हो चुके थे डा० चौधरी। प्राविडेंट फड का एक एक पैसा निकाल चुके थे। बैक बैलेंस शून्य तक पहुच चुका था।

पर रीता को हुआ क्या ?' डा० चौधरी के कुछ व्यवस्थित होने पर मैंने पूछा।

कुछ पता नही चलता।' उन्होंने आखो के कोरो को पोछते हुए कहा।

'आप इतने बडे डाक्टर है, आपको भी ? मैंने शका व्यक्त की।

हा, मुझे भी पता नही चलता। ऐसे मन उसका पूरा इन्वेस्टिगेशन कराना चाहा, पर राजीव ने मना कर दिया। कहा, इससे उस पर व्यथ का स्टेन पडेगा और बचने की जो भी थोडी-बहुत उम्मीद है वह भी जाती रहेगी। और तुम जानते ही हो राजीव अब डाक्टर है। उसके साथी और वह मुझ बूढे की इस अनजानी जगह म चलने ही कहा देते हैं ?' डाक्टर चौधरी ने अपनी विवशता प्रकट की।

क्या उसकी हालत इतनी गभीर है ?"

गभीर है, तभी तो उसे इन्टेंसिव-केयर-यूनिट म डाल चुके है। हर दो-तीन घटे पर कामा म चली जाती है। तुम्हे बहुत याद करती है। कहती है अकल से मिला दो। दो दिनो मे जब होश आता है, एक ही रट ले बैठती है। सोचा, तुम्हे बता दू। मैं आज आवश्यक काय वश मुख्यालय वापस जा रहा हू। राजीव यही रहेगा। तुम आज ही जाकर मिल लेना पता नही फिर मिलना हो या नहा।" इतना कहकर डा० चौधरी अपनी कार की ओर बढे और आखें पोछते हुए पिछली सीट पर जा बठे। मुझे लगा उनका बोझ, अब उनके परो की तुलना म, उनके हाथ म पडी बेंत की छडी ही अधिक हो रही थी। मैं लाख रोकते रह गया कुछ चाय पानी, नाश्ता-वाश्ता ही कर लें, पर व रुके नहीं। मुझे वे एक एसे खिलाडी के सदृश लगे जो अपना अतिम सिक्का भी दाँव पर

निराश होने की बात नहीं। यह सत्य है। मेरी इस प्रगल्भता पर नहीं जाओ, यह दीप के बुझने के पहले का प्रकाश है। मुझे ठीक नहीं होना है। यह तुम्हारी और मेरी अंतिम मुलाकात है।"

'पर, तुम्हें हुआ क्या है?"

' मेरे बाद तुम सब जान जाओगे।'

और वह मुलाकात रीना से मेरी सचमुच अंतिम मुलाकात था। दूसरे दिन ठीक उसी समय गया तो रीता बिछावन पर नहीं थी। उसका गठरी-सी बनी प्राय निर्जीव सी देह को पूरी तरह चादर से ढक दिया गया था। बगल में लगा 'पेस-मेकर' पता नहीं किस गड़बड़ी से जोर जोर से आवाज कर रहा था। उस दिन वाली सिस्टर अब भी कमरे में मौजूद थी जिसने मुझे आते ही पहचान लिया था।

रीता अब नहीं लौटेगी साहब।" सिस्टर ने जैसे अपना फैसला सुनाया था। आपके जाने के थोड़ी ही देर बाद वह 'कोमा' में चली गई थी और यह उसकी अंतिम 'कोमा' है। कल से ही पेस मेकर लगा है। दिल लगातार डूबता जा रहा है। अब कोई आशा नहीं।"

'शायद वह मुझसे मिलने के लिए ही अब तक जिन्दा थी।'

हो सकता है, तभी उसने तुम्हारे नाम एक पत्र भी दिया है। वह लिख नहीं सकती थी, पर पता नहीं कहाँ की शक्ति जुटाकर उसने कोमा में जाने के पूर्व इसे धीरे धीरे लिखा था। वह मुझे कसम दे चुकी है कि यह पत्र सिवा तुम्हें और किसी को न दिखाऊं।'

थोड़ी देर में बिजली चली गई थी तो सिस्टर ने हाथ से पेस मेकर को आपरेट करना शुरू कर दिया था। कितनी निष्ठा थी इस नर्स में अपने कर्त्तव्य के प्रति कि एक जिन्दा लाश के फेफड़े में भी वह हवा भरती जा रही थी।

सुबह होते होते रीना के प्राण पखेरू उड़ गए थे। मैं रात भर उसके सिरहाने बैठा रहा था। मुझे आश्चर्य हुआ था कि राजीव इस बीच एक बार भी उसे देखने नहीं आया था। जाड़े की उस रात में वह सिस्टर और मैं ही रीना के अंतिम प्रयाण के साक्षी रहे।

मन प्राय सहसा गंगा तट की ओर चला जाता है। दो-ढाई घंटा में

ही रीता राख हो गई थी। जली-अधजली हड्डिया के साथ सारे भस्म को गंगा के पुण्य-तोया प्रवाह के हवाले कर दिया गया था। बची-खुची राख को भागीरथी की चंचल लहरें किनारों से पीछे ले गई थी।

'एक बात जानते हो रमेश ?' डा० चौधरी ने अपनी आंखों को पोंछते हुए कहा था।

'क्या ?

'कल ही राजीव की शादी है उसी के अस्पताल की एक एंग्लो इण्डियन नर्स के साथ।"

क्या कहते हैं आप ? मैंने आश्चर्य प्रकट किया था।

'हां ठीक ही कहता हूं। रीता मरी नहीं। मारी गई है, पर इसमें भी उसका सहयोग रहा है। अंतिम दिनों राजीव के रास्ते का कांटा नहीं बनना चाहती थी वह।"

और तब मैंने डा० चौधरी से छिपाकर रीता के पत्र को खोला था।

अंकल,

मैं जा रही हूं। तुम जीत गए और मैं हार। राजीव को तुम मुझसे अच्छी तरह जानते थे। मैं उसे पहचानने में गलती कर गई। मुझसे शादी करने के पूर्व से ही वह उस नर्स से प्यार करता था। मुझसे शादी तो उसने मेरे पिता की सम्पत्ति को देखकर की थी। दहेज में प्राप्त धन का लालच दे वह दूसरी शादी रचाना चाहता था। मैं उसमें बाधा नहीं बन सकती थी। कोर्ट-कचहरी करना भी बेकार था। जब पति के हृदय में स्थान नहीं तो कानून क्या दे जायगा ?

तो मैंने हामी भर दी, राजीव के प्रस्ताव में। स्लो प्वायजनिंग के द्वारा समाप्त ही कर देना चाहा अपने को। वह एक मूर्खता थी, तुम कह सकते हो। पर मन इस त्याग की सना दी। जिसमें प्यार करती थी, उसकी खुशी के लिए कुछ भी कर सकती थी। खैर पर एक गलती हो गई अंकल! सुनोगे तो क्या सोचोगे, पता नहीं। मेरे पेट में राजीव का अंश पल रहा है। यह गलती मुझे बाद में मालूम हुई। उम्मीद है मेरी इस अंतिम मूर्खता को भी माफ कर दोगे तुम।

पर मेरी एक अभिलाषा है अन्तिम अभिलाषा। तुम जूली से मिलना।

लहरें, कटाव और किनारा

एक क्षण को उसे लगा कि वह चलते चलते सोने लगा है और उसे कोई मीठा मीठा-सा मोहक स्वप्न आने लगा है पर दूसरे ही क्षण अपने इर्द गिर्द के अवलोकन से उसने अपनी स्थिति की यथार्थता का अन्दाजा लगाया। उसके दोनों किनारे किताबों के ऊँचे ऊँचे सेल्फ ज्यों के त्यों खड़े थे, बाएँ किनारे के अध्ययन कक्ष के बीच के टेबुल पर पड़ा एक बड़ा सा ग्लोब अब भी हवा की हल्की हरकत पर हल्के चक्कर काट जा रहा था और दाहिने किनारे के गलिआरे के बीच के इन्डेक्स-टेबुल पर खड़ी सफेद स्वेटर वाली लड़की अब भी वहाँ खड़ी कोई पुस्तक ढूँढने में व्यस्त थी। सब कुछ तो अभी एक क्षण पूर्व देखे जैसा ही था। तो अभी अभी जो कुछ उसने देखा था वह स्वप्न नहीं, सच था? और उसने अपनी आँखों को पूरी तरह फाड़कर अध्ययन कक्ष के ऊपर लटकती गलरी पर जमा दीं। हाँ वह सुप्रभा ही थी। उनके बीच कुछ दूरी अवश्य थी फिर भी उसकी आँखों को धोखा नहीं हो रहा था। उतनी बड़ी-बड़ी खुली सीप-सी आँखें जिनमें समार भर का भोलापन जैसे मोती-सा सिमट आया हो और किसी की नहीं हो सकती थीं तथा उल्टे समद्विबाहु त्रिभुज के आकार का कटा तीखा चुभता चेहरा भी सिवा सुप्रभा के और किसी का नसीब नहीं हुआ है।

उसने अपने दोनों हाथों को जो पैंट की जेबों में पड़े थे और नीचे जाने दिया और फिर जैसे कुछ न देखा हो इस अन्दाज में दाहिने किनारे के सेल्फ पर पड़ी पुस्तकों को किसी वृद्ध दार्शनिक की मुद्रा में निहारने लगा। अवश्य ही सुप्रभा ने उसे देख लिया था और पहचान भी क्योंकि उसकी नजरें उस पर ही टिकी हुई थीं—आँखें एकटक खुली, किसी ऐसे दरवाजे के किवाड़ सी जिससे कोई अभी अभी निकल कर गया हो अथवा अभी-अभी प्रवेश करने वाला हो। यह भी हो सकता है कि वह उसकी

पीठ पर ही आई हो और बाहर पड़ी विजिटर्स बुक में उसका नाम दख उस प्राजन हो गलरी के उस स्थान पर जा पड़ी हुई हो जहा से वह सभी आने वाले पर नजर रख सकती थी। 'हो तो उसकी बला से' उसने सोचा और पैंट की जेब में हाथ डाले दो कदम और आगे बढ़ गया और दूसरे तरफ की किताबों को दृष्टिसात करने लगा।

यही हालत है उसके अहम् की। हर एक मोड़ पर जागता है और जाग कर सब कुछ स्वाहा कर देता है।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि लगातार दो महीने से वह सुप्रभा की तलाश में ही मारा-मारा फिर रहा था और उसकी एक झलक पाने के लिए उसका रोम-रोम तड़प रहा था, पर उसे दिखाई पड़ते ही जैसे सदा की तरह उसका अहम् उस पर हावी हो गया। सैकड़ों मील की दूरी तय कर कलकत्ता से कोई सात बजे इलाहाबाद पहुंचा था और युनिवर्सिटी का कोना-कोना छान देने के बाद यहां युनिवर्सिटी-लाइब्रेरी में अकस्मात् स्वप्न-सी सुप्रभा दिखाई पड़ गई थी। ऐसी उसे आशा यहां भी नहीं थी। क्योंकि गत दो महीनों में वह कानपुर, लखनऊ, वाराणसी और कलकत्ते की गलियों की खाक छान चुका था। इन सभी जगहों में सुप्रभा का सम्बन्ध पड़ता था और चूंकि उसे किसी भी जगह के किसी सम्बन्धी के घर का पता नहीं ज्ञात था, अतः सिवा इसके कि वह इन स्थानों के होटलों, सिनेमा घरों और पार्कों का चक्कर काटता फिरे, उसके पास और चारा नहीं था।

एम० ए० की परीक्षा पास करने के बाद ही सुप्रभा एक-ब-एक गायब हो गई थी और लाख सिर पटकने के बावजूद वह उसके घरवालों से उसका कोई सूत्र नहीं पा सका था, अन्त में लाचार हो उसे इस भटकाव का सहारा लेना पड़ा था। किन्तु अगर परसों कलकत्ते में उसके ममेरे भाई नवीन से भेंट नहीं हो गई रहती तो वह अब तक शायद इसकी यह पलक भी नहीं प्राप्त कर सका होता।

तो सुप्रभा रिसर्च स्कॉलर है यहां! पाश्चात्य काव्य पर प्राच्य चिंतन और अभिव्यक्ति का प्रभाव उसके शोध का विषय है—कम-से कम ऐसा ही नवीन के द्वारा ज्ञात हुआ है उसे। और यह संभव भी है। कविता के

प्रति सदा से ही झुकाव रहा है उसका और स्थान भी उसने अच्छा ही चुना है, पर इलाहाबाद से शान्तिनिकेतन ज्यादा अच्छा रहा होता। फिर भी कौन समझाता उसको?

वह आखें चुराकर एक बार बालकोनी की तरफ फिर देखता है। सुप्रभा अब भी खडी है। एक क्षण को उसका जी विद्रोह करना है। सब कुछ माफ कर वह उसके पास दौड जाना चाहता है और उसके कधो को दोनो हाथो से पकड कर कह देना चाहता है— मैंने तुम्हे माफ कर दिया सुप्रभा, तुम मेरी हो, केवल मेरी।' पर, काश कि उसके माफ करने से ही सब कुछ होने का रहता। उसका अहम् फिर जोर पकडता है और वह दाहिने किनारे के गलिआरे से होकर बाए किनारे के सिंगल-रूम मे बैठ जाता है।

उसने आज तक केवल एक ही लडकी से प्यार किया है और वह है सुप्रभा! और यह भी विडम्बना ही है कि अपने हृदय की सारी स्निग्धता देकर भी वह उसके दिल को नही जीत सका। सुप्रभा को वह कभी पहचान नही सका। प्यार भी उसी ने पहले आरम्भ किया था और फिर प्यार के नाजुक बधन को हाथ का एक करारा झटका भी उसी ने दिया था। उसे अब भी सारी बातें आदि से अन्त तक याद है। आरम्भ जितना आकस्मिक था, अन्त उससे ज्यादा रोमाचकारी नही। सुप्रभा को ऐसा नही होना था। उसने अपने ही हाथो अपनी सगमरमर की मूर्ति पर कोलतार की परत चढा दी थी।

"आपको पूर्णो कहते है न?" यह पहला प्रश्न था जो सुप्रभा ने उससे पूछा था। एडमिसन के बाद पहला ही क्लास था और पहले से ही वह लेट हो गया था और सीढियां चढने समय पीछे से आकर सुप्रभा ने रोक दिया था। नाम की स्वीकृति मे उसने सिर हिला दिया था। सद्धान्तिक रूप से उसने यह प्रतिज्ञा कर रखी थी कि किसी भी लडकी को अपने जीवन मे नही आने देगा।

"इस साल आपने ही बी० ए० ऑनर्स मे टॉप किया है न?" कैसी ढीठ थी सुप्रभा। अखबार मे तो उसका फोटो भी छपा था, उसमें पूछने की क्या बात थी और उसने दूसरी बार स्वीकारात्मक सिर हिलाया।

"रस्टिक !" उसने बगल से गुजरते हुए कहा और क्लास में घुस गई। वह आगे आकर भी पीछे हो गया था और क्लास में घुसा तो डा० चटर्जी को कहते सुना था, "सुप्रभा यू आर लेट, पूर्णो यू टू।"

पर यह बात तो इस कान से सुनकर उसने उस कान से बाहर कर दी। जो बात उसके दिमाग से नहीं निकल रही थी वह थी सुप्रभा के द्वारा कही हुई। जिसने आज तक अपने जीवन में कभी सेकण्ड नहीं किया। उसके लिए यह बात निश्चित ही बर्दाश्त के बाहर थी। पूरे क्लास तक वह अन्दर-ही-अन्दर जलता रहा और मन ही मन यह तय करता रहा कि क्लास समाप्त होते ही सुप्रभा से उनके इस व्यवहार का कारण पूछेगा।

"इक्सक्यूज मी...।" क्लास समाप्त होते ही उसने उसे पकड़ा था, पर बात नवोढ़ा की तरह होठों के फाटक पर ही लड़खड़ा गई थी। शायद पहला ही मौका था किसी लड़की से बात आरम्भ करने का।

"यस, यस" सुप्रभा उसकी तरफ मुंह करके सीधी खड़ी हो गई थी। घबड़ाहट की स्थिति में भी उसे लगा कि सुप्रभा बहुत खूबसूरत थी।

अमलताश की किसी नई पौध-सी सीधी खड़ी ऊंचाई में उससे थोड़ी ही कम, चुस्त सफेद पोशाक में क्लास रूम के दाहिने किनारे की बालकोनी में खड़ी वह ऐसी लग रही थी जैसे किसी शान्त सागर के तल से कोई जलपरी उठ आई हो।

"यू कॉल्ड मी..." उसने कहना चाहा था और लगा था कि परीक्षा के कड़े-से कड़े प्रश्नों का जवाब देना जितना आसान था उतना किसी लड़की से और खासकर सुप्रभा से बातें करना नहीं। उसका मुंह एकदम लाल हो गया था, पैर कांप रहे थे और जीभ कालतार की सड़क पर तिनके की तरह तालू से चिपक गई थी।

"यस, आई कॉल्ड यू रस्टिक एण्ड इट इज ए फैक्ट।" उसकी हालत उसने निश्चित ही समझ ली थी और बेझिझक ये बातें उगल दी थी।

वह आगे कुछ नहीं बोल पाया था। मधुमक्खियों के झुंड की तरह टूट पड़े लड़कों की जलती, प्रश्न चिह्न बनी आंखों को वह बर्दाश्त नहीं कर सकता था। क्रोध और शर्म के मारे उसकी बुरी हालत थी।

—बाहर कुछ खटका होता है। शायद इंडेक्स टेबुल पर की सफेद स्वेटरवाली लड़की जा रही है। सम्भवतः उसकी मनपसन्द किताब मिल गई है। ऐसे ही शायद सब किसी की अभिलाषा कभी न कभी पूरी हो जाती है। उस पर शायद कोई माया दर्शन हावी होने लगा है। वह अपने सिर को एक झटका देता है और अपने सिगार-रूम के दरवाजे को थोड़ा-सा खोल बाहर झांकता है। सफेद स्वेटरवाली लड़की जा रही थी। उसे उसका चेहरा क्लास रूम के उस ब्लैक बोर्ड-सा लग रहा था जिस पर अपना बोदा, गामा और न जाने क्या-क्या लिखकर प्रो० चतुर्वेदी उस्तर के एक हल्के स्पर्श से अन्यमनस्क रूप में पोंछ दिया करते थे।

उस दिन सुप्रभा का चेहरा भी ऐसा ही लग रहा था—पोंछे हुए ब्लैक बोर्ड की तरह। पूरे चार दिनों के बाद वह क्लास में आई थी। क्लास से उसकी अनुपस्थिति शायद एक प्रतिक्रिया स्वरूप थी। उस दिन क्लास रूम के बाहर वाली घटना के बाद कोई तीन रोज तक वह क्लास नहीं गया था। इसका शायद कुछ और मतलब निकाल लिया था सुप्रभा ने और लगातार चार रोज तक उसकी सीट खाली रही थी।

क्लास की समाप्ति के बाद सभी लड़कियों के बाहर चले जाने पर भी सुप्रभा के बाहर नहीं जाने पर उसके धैर्य का बाँध टूट गया था। बहुत देर तक दरवाजे पर खड़ा, वह निश्चय-अनिश्चय के मध्य झूलता रहा था। क्लास रूम में दुखा हुआ सुप्रभा का सन्ध्या की सूरजमुखी-सा म्लान चेहरा उसकी आँखों के समक्ष फैल गया था और उनका अन्तर सुप्रभा की सारी आन्तरिक पीड़ा के लिए उसका जिम्मेदार ठहरा रहा था। 'बेकार है यह सब। क्या सबूत है कि उसके दो रोज नहीं आने से ही सुप्रभा चार रोज नहीं आई है और उसकी याद में जल-जल कर वह अंगारे से राख बन गई है? नहीं यह बचपना है कोरी छिछली भावुकता।' कई बार उस दिन उसने अपने मन को समझाया था पर हर बार जब उसके पैर बरामदे की सीढ़ियों की तरफ बढ़ने को होते सुप्रभा का उदास क्लान्त चेहरा बेड़ी बनकर उसके पैरों में उलझ जाता और अन्त में बरबस-सा वह दरवाजे की तरफ खिंच गया था।

सुप्रभा अपनी सीट पर बैठी थी शान्त, निश्चल—जैसे किसी दूकान

के शो केस म रखी कोई बडी जापानी गुडिया । उसे देखते ही उसमे कुछ हरकत हुई और उसकी आखें एक-ब एक छलछला आई—जसे पूर चाद को देखकर दो नन्हे सागरो म ज्वार उमड आया हो ।

'आई एम सारी, वेरी सॉरी मिस्टर पूर्णो !' उसने धीमी, पर स्पष्ट आवाज म कहा और पूर्णो को लगा दर्द का एक हल्का तराना हवा मे तर गया हो । उसके स्वर से लगा जसे उसे घोर पश्चाताप हो रहा हो अपने व्यवहार पर ।

'डोट माइ ड !' वह उसकी सीट स कोई एक गज की दूरी पर आकर खडा हो गया था । उसकी हालत एक-ब एक ऐसी हो गई थी जो अभूतपूव थी । उसे लगा वह हिमालय की किसी चोटी पर रखा बफ का एक गोला हो जो सूरज की पहली किरण के साथ ही पिघलना शुरू हो गया हो । दोषी वह अपने को बता रही थी और पूर्णो को लग रहा था उसस ज्यादा दोष उसने किया है । अब हालत यह थी कि सुप्रभा का मुह ब द हो गया था और आखें खुल गई थी । जैसे क्षितिज पर घिरते घूमते बादल अकस्मात सिर पर आ बरसने शुरू हो गए हो । पूर्णो को यह सब कष्टप्रद लग रहा था, साथ ही अजीब-अजीब भी ।

'थोडा बैठिएगा नही ?' सुप्रभा ने मुख खोला था और उसे लगा था किसी ने एवरेस्ट की चोटी पर चढाकर लुढकने का प्रस्ताव कर दिया हो । उसे अपनी प्रतिज्ञा याद आ गई थी—लडकियो से दूर रहने वाली और उसे लगा अ दर आकर उसने स्वय अपने को एक ऐसे जाल म फसा लिया है जो निर तर कसता जा रहा है ।

'मुझे क्षमा कर दीजिए ।" सीट से उठकर वही खडा होते हुए सुप्रभा ने कहा ।

'क्षमा तो मुझे आपसे मागनी थी । आपने तो ।'

"नो मिस्टर पूर्णो ! आई एम ऐट फाल्ट । आई रियलाइज माई स्टूपिडिटी । उसने कहा और सीट स बाहर निकल आई । कमरे से बाहर निकलने क पहले उसने अपनी आखो को पोछा और आधी भीगी आधी सूखी आखो स उसे देखते हुए अपने साथ आने का इशारा किया । वह ताग म बधे पतग की तरह दरवाजे तक आया था । यहा आकर उसे लगा कि

उसका कार्य समाप्त हो गया था और उसे चलना चाहिए था। बरामदे की सीढ़ियां पारकर वह नीचे उतरने ही वाला था कि सुप्रभा ने आगे बढ़कर उसकी दाहिनी बांह थाम ली थी। बारूद को जैसे तिल्ली छू गई थी उसके मुंह से अनायास निकल गया था— ह्वाट इज दिस नानसेन्स !"

उसने अपनी नजर चारों ओर घुमा कर देखा—युनिवर्सिटी कम्पस एकदम खाली हो चुका था। बरामदे के नीचे डालियों के लाल लाल फूल हल्के-हल्के झूम रहे थे और पीछे की ओर बहती भरी हुई गंगा का कलकल स्वर हवा में तर-तर कर यहां तक पहुंच रहा था।

'दिस इज लव मिस्टर पूर्णो। लव आफ ए गर्ल फार ए ब्वाय आफ ए वूमन फार ए मन।" सुप्रभा ने कहा और लाल हो गई तथा उसे लगा कि उसके शरीर का सारा खून निकलकर उसी के शरीर पर फैल गया। 'लव ऑफ ए गर्ल फार ए ब्वाय आफ ए वूमैन फार ए मन।' आवाज बहुत देर तक उसके कानों में गूंजती रही और वह उतनी देर तक जैसे अर्द्धविक्षिप्त अवस्था में खड़ा रहा। इसी अवस्था में नाच गए उसकी आंखों के समक्ष उसके मैट्रिक से लेकर बी० ए० तक के प्रमाण पत्र और मैडल्स जो उसे हर परीक्षा में प्रथम आने के उपलक्ष में मिले थे। साथ ही उसकी आंखों के समक्ष फैल गया अन्धकार का एक विस्तृत समुद्र जिसमें उसका पूरा भविष्य डूबता-उतरता नजर आया।

'लव ? नहीं। लड़की ? नहीं नहीं।' उसके मन ने तर्क किया और वह बिना कुछ बोले अपने हाथ को छुड़ाकर चलने को हुआ।

एक मिनट मिस्टर पूर्णो और फिर चले जाइएगा। नहीं रोकूंगी मैं आपको।" सुप्रभा जैसे गिड़गिड़ाई और उसे फिर लगा कि वह हिमालय की चोटी पर का एक बर्फीला गोला बन गया है। उसके पांव रुक गए।

एक मिनट।" उसने फिर कहा और बरामदे के दाहिने गलियारे की तरफ मुड़ गई। इंजन में जुटे डिब्बे की तरह वह उसके पीछे घसीट गया और कोई दो मिनट में गलियारे को पार कर वे गंगा के किनारे पहुंच गए। घाट की सीढ़ियों पर रेलिंग पकड़ कर वह खड़ी हो गई और विवश-सा वह उसके दाहिने किनारे खड़ा हो गया। नीचे गंगा का पानी

हिलोरे लेकर वह रहा था। इक्के-दुक्के जगी जहाज बीच धार म तरत जा रह थे।

"इन लहरो को देख रह हा मिस्टर पूर्णो? लोल और ववस। हवा के एक थपेडे पर असहाय सी नाचती हुई?" उसन पूछा।

हा' एक कापती आवाज उसके मुख से निकली, ठीक उसी तरह जसे धार के किनारे बधी वह छाटी सी डागी काप रही थी।

अगर मैं कहू कि ऐसी ही लहरें मेरे दिल मे भी उठ रही है और लहरा का कारण मेरी बगल म खडा व्यक्ति ही है ता?"

"मैंन कुछ समझा नही।' उसने समझ कर भी नासमझी की बात की क्योकि सुप्रभा की इस बात से उसे लगा कि उसकी स्थिति गगा के उन कगारा की हो रही है जिन पर लहरा के थपडे पर थपडे लग रह हैं और हर थपेडे के साथ जिनका भविष्य खतरे के एक कदम और करीब पहुच जाता है।

"तुम सब समझते हो पूर्णो! या जानकर भी अनजान बनन का नाटक कर रहे हो। जो व्यक्ति शेक्सपियर और वडसवथ की पोयेट्री की गहराइया को माप सकता है, जो कीट्स और शैली की कल्पना की ऊचाइया तक चढ सकता है, वह एक लडकी के दिल की भावनाओ का अदाज न लगा सके, असभव। मैं तुम्हारे बारे म सब कुछ जानती हू पूर्णो! अग्रेजी के हेड आफ दी डिपाटमट के घर भी तुम्हारे क्लास म कापते ह। सुप्रभा ने कहा और पूर्णो को लगा कि डा० चटर्जी क पैर उसके क्लास म कापते हा या नहीं, पर अगर उसके पर यहा पर फिसल गए ता भगवान ही खर करे।

गगा की लहरा म वह प्रकृति का शाश्वत सगीत सुना करता था। अकेले म किनारो की सीढिया पर पैर लटकाकर वह गगा के पार नील क्षितिज की तुलना उस महान चित्रकार के एक बडे कनवास स किया करता था जिस पर बादला के अनेका चित्र बनते मिटते रहत थे। लहरों पर बह गए किसी सुदर लाल फूल को देखकर वह कई बार कालिदास के अभिज्ञान शकुतलम की अमर पक्तिया गुनगुना चुका था और उसके समक्ष वन कुजा से उठती हुई छुई मुई सी शकुतला की मूर्ति साकार हो गई थी। पर आज उसका सारा सगीत सो गया था। कल्पना का जैसे

काठ मार गया था और उसका दिल अक्समात पाषाण का एक टुकडा बन गया था । उसकी महत्वाकांक्षा ससार की हर चीज स ऊपर थी। एम० ए० म सवप्रथम आ गोल्ड मडल लने की अपनी प्रतिना पर किसी प्रकार का प्रभाव न पडे इसके लिए वह सजग था और अपनी उस मजिल तक पहुचन के लिए वह राह के सभी प्रलाभना को ठुकरान का तयार था। काटें तो काटें, वह "रा तले आए फूला का भी ममलन को तयार बठा था।

अवश्य ही सुप्रभा सुदर थी, कोमल थी और शायद कालिदास की शकुतला की तरह विशुद्ध भी क्याकि इधर क कुछ ही दिना म उसने सुप्रभा के बार म जो कुछ सुना था वह उसकी कुशाग्रता और चारित्रिक विशुद्धता स ही सम्बधित था । वह अपन विश्वविद्यालय से प्रथम स्थान प्राप्त कर आई थी और आम लडकिया की तरह उसके भूत अथवा वतमान क साथ काइ कहानी चिपकी हुई नहीं थी । यूनिवर्सिटी के लडके उसकी तुलना सगमरमर की उस चट्टान स किया करत जा सुन्दर तो होती है आकषक भी पर पाषाण तो अतत पाषाण ही हाता है । आज उसी सुप्रभा की स्थिति यह थी कि वह अपन अतर म उठन वाली लहरा की तुलना गगा की इन राशि राशि उद्दात तरगा से कर रही थी । पर क्या कारण हो सकता है इसका ? वह कुछ समय नहीं पा रहा था। उस सुप्रभा की स्थिति पर आश्चय हा रहा था और अपन भविष्य पर अविश्वास ।

तुम कुछ बोलते नहीं पूर्णो ? क्या तुम समझत हा कि जिन्दगी म प्यार का काइ महत्व नहीं ?' सुप्रभा न मौन ताडा था और चूकि अब उसन एक महत्वपूर्ण प्रश्न उठा था, अत उस जवाब दना ही था।

जिदगी म प्यार का महत्व हाता है मिस सुप्रभा पर हर चीज का समय होता है।"

'प्यार के लिए और समय ? हाउ सुड यू कम फस्ट क्लास फस्ट मिस्टर पूर्णो ?" सुप्रभा अनायास हस पडी—ठीक वसे ही जस काई प्रौढ किसी बालक की मूखता पर हसता है "मुहब्बत और मौत क लिए कोई समय नहीं होता ।' वह किसी सिनमा का डाइलाग बाल गई

और फिर सहसा गम्भीर हो गई थी।

ठीक इसी तरह गाधी घाट की रेलिंग पकड कर खडी थी सुप्रभा और ठीक इसी तरह खुले दरवाजे-सी फटी फटी थी उसकी आखें जिसके काना पर क्षितिज के जल भरे बादला की तरह आसू की बूदें एकत्रित होती जा रही थी। सिंगल रूम म बैठे पूर्णो को याद आ रही है बालकानी पर खडी सुप्रभा की। हा वह अब भी वही होगी। जिन्दगी भर प्रतीक्षा करने की बात जो वह कह रही थी उस दिन।

"तुम प्रतीक्षा कर सकती हो मिस सुप्रभा ! यह तुम्हारा अधिकार है। पर तक के माध्यम से तुम किसी का प्रम करने का बाध्य नहीं कर सकती। यह तुम्हारी ही नहीं पूरी मानवता की विवशता है।' वह बोला था और चलने को हुआ था।

"तुम जा सकते हो पूर्णो', सुप्रभा अबकी बार एकदम बुनकर बोली, पर इतना याद रखना तुम एक लडकी का प्यार भरा दिल तोड रहे हो। हो सकता है परिणाम अच्छा नहीं हो।

"मैं हर परिणाम क लिए प्रस्तुत हू पर मैं प्यार की वदी पर अपनी महत्वाकाक्षाओ की बलि चढाने का प्रस्तुत नहीं। थोथी भावनाओ की अग्नि म मैं अपनी सम्भावनाओ का स्वाहा नहीं कर सकता। कतव्य, प्यार से महान होता है सुप्रभा और जितना बडा कतव्य होता है उतने महान त्याग की वह अपेक्षा भी करता है। नहीं, मुझे तुमसे प्यार नहीं है और न होने की कोई सम्भावना है।'

"ठीक से सोच लिया पूर्णो ? देख लो शायद अन्तर के किसी कोने मे स्निग्धता की कोई रखा वतमान ही हो।' सुप्रभा ने कहा। उसके स्वर का स्वाभाविक माधुय समाप्त हो गया था।

'सोच लिया है। स्निग्धता का मेरे अन्तर म कोई स्थान नहीं। भावनाओ को मैं कविता की पुस्तका तक ही सीमित रखने का कायल हू। व्यवहारिक जीवन की वास्तविकता से उनका कोई सम्बन्ध नहीं।" उसका उत्तर दृढ था। पत्थर पर प्रहार करना व्यथ था। सुप्रभा इस बात को समझ गई और बोली—

'ठीक है पूर्णो। तुम्हारा न्याय भी ठीक ही है। पर इतना याद

रक्खो औरत का दिल हर किसी पर नहीं आता और जिस पर आता है जिन्दगी भर के लिए उसी का हो जाता है। यह बात तो कई बार कही जा चुकी है पर यह आज उतना ही सत्य है जितना तुम्हारे प्रति मेरे दिल में जमा यह प्यार। और हां पूर्णो, मैंने अभी अपने प्यार की तुलना गंगा की इन उत्ताल तरंगों से की है और मैं एक बार फिर कह देना चाहती हूं कि गंगा की ये लहरें जब-जब मौज में आई हैं कूल किनारों को तोड़ इन्होंने कितने आबाद नगर वीरान कर दिए हैं कितने बियाबान मरुस्थल में परिवर्तित कर दिए हैं, कहीं मेरे प्यार की ये क्षुब्ध लहरें तुम्हारे सपनों की अट्टालिका को भी धराशायी न कर दें।'

सुप्रभा एक स्वर में बोल गई।

'मैंने कहा न, मैं हर परिणाम के लिए प्रस्तुत हूं।' उसने छोटा सा जवाब दिया और पीछे मुड़ गया। उसे लगा कि लहरों के जाल में फंसा कोई जंगी जहाज अनायास उनकी कैद से मुक्त हो गया।

जहाज लहरों की कैद से मुक्त तो हुआ पर वह तूफान के पंजों में जा फंसा। पूर्णो को याद आ रही है उसके बाद की घटनाएं जिन्होंने उसके सपनों के सारे महलों को अपने क्रूर थपेड़ों से धराशायी कर दिया। एम० ए० में प्रथम आने की उसकी महत्वाकांक्षा धरी की धरी रह गई तथा आज जब वह सुप्रभा के प्यार का मारा हिंदुस्तान के सारे शहरों की खाक छानता चलता है वह रिसर्च कर रही है और आज या कल किसी युनिवर्सिटी में लेक्चरर होगी जहां फिर से एडमिशन ले शायद पूर्णो को अपना एम० ए० पूर्ण करना पड़े।

गंगा के किनारे की घटना के दूसरे ही दिन की बात थी। क्लास रूम में सुप्रभा के प्रवेश करते ही कोई चीज उसके शरीर पर ऊपर से नीचे तक रेंग गई थी। सुन्दर और आकर्षक तो वह पहले से ही थी पर आज जिस रूप में वह थी वह कभी पूर्णो की आंखों के समक्ष कल्पना में भी नहीं आया था। उसे लगा प्यार की देवी 'वीनस' जैसे पृथ्वी पर अवतरित हो आई हो अथवा क्लियोपेट्रा ने दुबारा जन्म ग्रहण किया हो। शैम्पू करके ऊंचे किए केशों में जूही के सफेद फूलों की वेणी, सफेद सिल्क का स्लीवलेस ब्लाउज और उसी रंग की साड़ी, गर्दन में एक सफेद माला शायद

हाथी दात की और पैरा म सफेद चप्पल—सब कुछ अनदेखा और अक ल्पित। नही, सुप्रभा न कुछ खास आभूषण नहीं धारण किए थ, कोई आडम्बर नही था, सहज सौदय सीधे सरल रूप म निखर आया था।

आज उसकी दष्टि न चाह कर भी बार बार सुप्रभा की ओर उठ रही थी, पर सुप्रभा न एक बार भूल कर भी उसकी तरफ नहीं दखा था। डा० मुखर्जी का क्लास था और वह नाटस लेन म व्यस्त थी।

उसी दिन की एक छोटी सी घटना को याद कर आज भी उसका मन अपमान से जल उठता है। यह शायद उसके जीवन की पहली पराजय थी जिसने उसकी अतिम और सबसे ज्यादा भयावह पराजय की भूमिका गढ दी थी।

'कैन यू डिफाइन सम इम्पार्टेंट ट्रेंडस इन माडन पोयेट्री ?" डा० मुखर्जी न प्रश्न किया था। सभी की आखें पूर्णो की तरफ उठ गई थी पर उसकी आखें कहीं और थी।

"मिस्टर पूर्णो!' डा० मुखर्जी न सीधे उसे ही सम्बोधित किया तो वह अपन म आ गया।

'यस सर!'

"कुड यू हियर माई क्वेश्चन?'

'नो सर।'

नो सर! पूरा क्लास जसे स्तब्ध रह गया। यह पहला ही अवसर था जब पूर्ण कुमार के मुख से किसी प्रश्न के जवाब म नो निकला था। सब कुछ इतनी जल्दी म हुआ था कि वह नवस सा हो गया था। प्रो० मुखर्जी द्वारा उसके सुप्रभा की तरफ देखते पकड़े जाने ने उसे अस्त-व्यस्त कर दिया था। वह अपनी सीट पर बैठ गया। पूरे क्लास की काइ सौ आखा न वे उसे देर तक घूरकर दखा, नहीं देखा तो केवल दो आखा न। व थी सुप्रभा की आखें। वह उस दिन क्लास म सचमुच कुछ पढ नहीं सका। नाटस भी नहीं ले सका। अपनी जिन्दगी की इस पहली असफलता को स्वीकार करन को उसका मन प्रस्तुत नही था। गगा के किनारे सुप्रभा के साथ अपन व्यवहार पर उसे अफसोस हो रहा था और वह जी जान से इस

तो यह सारा बनाव श्रृंगार सुधीर के लिए है ! उसका मन एकदम एक सुप्रभा के प्रति भारी घृणा से भर गया था। पत्र को बिना पढ़े ही उसने टुकड़े-टुकड़े कर दिए। जो पहला विचार उसके मन में आया वह था लाइब्रेरी में जाकर सबके समक्ष ही सुप्रभा के मुंह पर थूक देने का। चुडैल ! आज से कुछ माह पूर्व गंगा के किनारे अपने प्यार की तुलना गंगा की पवित्र लहरों से कर रही थी और बता रही थी कि औरत का दिल किसी एक ही पर आता है। पर आज हालत यह है कि एक अदने से स्पोर्टसमैन पर उसका दिल क्रिकेट के बॉल की तरह लोट-पोट होने लगा है। छि उसके मन में जैसे घृणा का ज्वालामुखी फूट पड़ा हो और उसका जी उसकी भीषण में ज्वाला जलने लगा हो।

क्लास रूम से बाहर आ वह डेरे की तरफ मुड़ा, पर वहां भी शान्ति नहीं मिली। उसकी जिन्दगी की वह पहली रात थी जब वह पूरी रात तारे ही गिनता रह गया था। उसे पहली बार लगा कि शारीरिक पीड़ा से मानसिक पीड़ा ज्यादा कष्टप्रद होती है। वह अपनी तुलना उस अदने से सुधीर से कर रहा था जिसे वह लगातार कई वर्षों तक पढ़ा सकता था। सुप्रभा ने उसे सुधीर के समान ही समझा कि उसे उसका स्थान दे दिया— यही एक भावना थी जो उसे असह्य पीड़ा दे रही थी और जसे-जसे रात बीतती जाती उसकी पीड़ा तीव्र से तीव्रतर होती जाती। उसने अपने दिल को सांत्वना भी देना चाहा—सुप्रभा सुधीर से प्यार करती है तो उसकी बला से। दुनिया की प्राय हर लड़की किसी न किसी से प्यार करती ही है तो क्या सबका जिम्मा ले रखा है उसने ? पर लाख सिर पटकने पर भी वह अपनी अशान्ति पर विजय नहीं पा सका और उसकी रात आंखों में ही कट गई।

दूसरे दिन वह यथा समय क्लास में गया तो उसका चेहरा उतरा हुआ था, दाढ़ी बढ़ी हुई थी, पर सुप्रभा एक ताजे फूल के समान खिली थी। क्लास में उसकी आंखें एकाध बार सुधीर की तरफ उठीं। शायद रोज ही ऐसा होता है उसने सोचा उसका मन और भर आया।

यूनिवर्सिटी परीक्षा धीरे धीरे करीब चली आई। पूर्णो सोच रहा है। सुप्रभा और सुधीर को लेकर बातें हवा में फैलने लगीं। सुप्रभा के पड़ोसी

के एक लडके न एक दिन यह भी बताया कि सुधीर अक्सर सुप्रभा के यहा जाता है। व नोटस एक्सचेंज करते है और कभी कभी कम्बाइन्ड स्टडी भी। सब कुछ सुन-सुन उसका दिल जलता जाता और पढाई से से उसकी तबियत उचटती जाती। फिर भी उसन किसी तरह पढाई करने म अपन को जुटाए रखा। टॉप करने की बात तो अब स्वप्न सी हो गई थी फिर भी किसी तरह परीक्षा मे बैठ जाने पर वह बहुतो से अच्छा कर सकता था। पर इसी बीच एक ऐसी घटना घट गई जिसने उसे कही का न छोडा। आज भी उस घटना को याद कर उसके मन की घृणा का पुराना ज्वालामुखी फटने फटने को हो जाता है।

परीक्षा के दो दिन रह गए थ। एडमिशन काड क वितरण का दिन था। वह कुछ सवरे ही डिपार्टमेन्ट आफिस पहुच गया था। सुप्रभा वहा पहले से ही मौजूद थी। उसन दरवाजे स ही ठिठककर लौट जाना चाहा। डिपार्टमन्ट म कोई नही था। सुप्रभा अकली एक कुर्सी पर बैठी थी। पर वह लौटता इसके पहल ही सुप्रभा न आवाज दी, 'मिस्टर पूर्णो वन मिनट प्लीज'। वह उसकी तरफ बिना देखे ही खडा हो गया तो उसने एक काड उसकी तरफ बढा दिया। नहीं, यह उसका एडमिशन काड नही था—यह था एक सुदर सा वेडिंग काड जिस पर सुप्रभा और सुधीर की शादी की बात छपी थी। शादी परीक्षा की समाप्ति के दूसर ही रोज सम्पन्न होने वाली थी। उसक हाथ म जसे किसी ने जलता हुआ शोला पकडा दिया हो। वह उल्टे परो लौट आया। उसन एडमिशन काड नही लिया और न परीक्षा ही दी। सुप्रभा एम० ए० म प्रथम आई। सुधीर असफल हो गया।

और आज दो साल बाद वह यहा बैठा है—इस लाइब्रेरी हॉल म। दो साल म बहुत कुछ बदल गया है—सुधीर फौज म भर्ती हो गया है, सुप्रभा अब विवाहित है और पूर्णो की विक्षिप्तावस्था बहुत कुछ समाप्त हो गई है और इस साल वह अपना एम०ए० का का सोच रहा है।

सहसा उस याद आती है बालकनी पर खडी सुप्रभा की बात। वह क्या अब तक वहीं खडी होगी? हो भी सकता है। उसी ने कहा था—'औरत का दिन ।' वह लाइब्रेरी क अपन सिगल रूम स बाहर आ जाता है। बालकनी की तरफ देखता है—सुप्रभा वहा खडी है उसके

पैर आगे बढ़ते हैं, घूमकर सीढ़ियाँ चढ़ते हैं। दिल की धड़कन बढ़ने लगती है। सुप्रभा अब भी बालकोनी पर खड़ी है, उसकी पीठ उसकी तरफ है। वह एक क्षण को ठिठकता है उससे कह देना चाहता है कि गंगा किनारे की उसकी बात को वह अब मानने को तैयार है, नहीं कह सकता कि यह भटकाव उसके लिए असह्य है। पर उसे याद आ जाती है सुधीर की बात, उसको लिखे पत्र की बात और फिर वेडिंग कार्ड की बात। उसके पैर वापस लौट जाते हैं, क्योंकि उसका अहम जाग उठता है।

यही हालत है उसके अहम की, हर ऐसे मौके पर जागता है और जाग कर सब कुछ स्वाहा कर देता है।

अब सूर्योदय नही होगा

गायत्री ने उत्तर की खिड़की खोली तो खिडकी भर हवा भरभरा कर उसकी लटा मे खेल गई। उसने दोना तजनिया क माध्यम स अपने ललाट पर एक त्रिभुज बनाया और फिर उसे एक अद्धवत्त का रूप दे फिसल आई लटा को काना के आप पार सहेज दिया। बाहर शन शनै गाढा होता अधकार पूरे पवत प्रदेश को अपन आगोश म समेटता आ रहा था। पश्चिमीय क्षितिज पर छिटकी रक्तिम लालिमा धीरे धीरे धूमिल पडती जा रही थी और पवतीय घाटी स अपन नीडा का वापस लौटते पक्षिया क गतिमान डैना से फूटी साय साय की आवाज और उनके कल-रव स भरकर वातावरण मुखरित हो रहा था।

आज उस कुछ दर हो गयी थी। हिमवान की चोटिया आधे घटे तक जलकर बुझ चुकी थी। अब फिर बाहर घटे की प्रतीक्षा। भारत-नेपाल सीमा पर वायु परिवतन क लिए आए उन्हे आज दो माह हो रहे थे और इन दो माहो म शायद ही कोई सुबह या शाम गुजरी हो जब उसन इन चोटियो का जलना न देखा हो। सूरज की प्रथम और अन्तिम किरणो क साथ ही चोटियो की बफ जल उठती है—जसे कोयने क अनगिनत दहक्त लाल अगारे। उस यह सब अच्छा लगता है। और यही क्या इस पवन प्रदेश का चप्पा चप्पा उसके मन का भा गया है। शाख हिरण की चाल स उछलत-कूदत पवता की पाषाणी छातियो को रौंदते ल्हड जलप्रपात गिरि शृगो की गगन चुम्बी पक्तियो को छेड़ती मचलती …व माला तथा पवतो को आपादमस्तक ढक्ता धरती स आकाश तक हरीतिमा का अम्बार-सा प्रस्तुत करता राशि राशि वनस्पति पुञ्ज सब गायत्री क मन प्रागण म रच-बस गय है। नरेन्द्र की बाहो म बाह डाल वह इस घाटी की इच इच धरती का इन दो महीनो म ही अनगिनत बार

अपन शाख पैरो से रौंद चुकी है। इस प्रदेश का हर जगली जीव उसका मित्र सा बन गया है। हर ऐसे समय जब नरेन्द्र अपने साथिया के साथ शतरज पर जम गया है अथवा आकाश म उमडत घुमडते बादला का देख डाक बगले के बरामदे मे आरामकुर्सी खीच कविता की कुछ पक्तिया जोडन लगा है या कालिदास के मेघदूत के श्लोको को गुनगुनाने लगा है, वह अपना रत-म्हाट सम्भाल इन पहाडी घाटियों म दौड गई है। घटा वह किसी पाषाणी चट्टान अथवा पहाडी घाटिया या वक्ष की छाया म बठ किसी मगछौने का अग म भर सहलाती रही है, अथवा पहाडी कन्दराआ म घूमत निकलते मेघ शावका को निहारती रही है। पर, जब जब उसने इन मृगछौना को अपन अक म बाधा है अथवा मघ शावका की आख मिचौनी का निहारा है, उसके अन्दर कही पर एक अग्नि सी सुलगी है और उस लगा है उसके अन्दर की वह दाहक आच एक-ब-एक पूरे वन प्रान्तर म फैल गई है और उसकी लपटा मे जलसिक्त वृक्ष-पहाड, जगल झाडी और घाटी मदान सभी धू धू कर जल उठे है। हर ऐसे समय वह उलटे पाव अपन डाक बगले को भागी है और इस डर से अपने कमरे क सभी दरवाजा खिडकिया को बन्द कर लिया है कि कही कोई भूला भटका मघ शिशु उसके कमरे म घुस उसके अन्दर की आच को और प्रज्वलित न कर दे। पर उसका सब प्रयत्न बेकार गया ह और दिन म तो न सही पर रात्रि की नीरवता म मेघ शावका और मृग छौना का पूरा झुड ही उसक कमरे म घुस गया है और उनकी धमाचौकडी स वह जब जब चौक कर उठी है तब-तब कमरे का रीता और अपनी आखा का भीगा पाया ह। अक्सर ऐसे मौको पर उसने स्वीच को आन किया है और बगल म साय नरेन्द्र को चक्झोर उसस चिपट गई है, तथा अपनी आखा मे छाई विवशता और असहायता को उसकी उनीदी आखा म स्वय ही प्रतिबिम्बित कर फूट फ्ट कर रो पडी है।

पूरे वन प्रान्तर का चीरती, जगली जीवा की चित्र विचित्र आवाजें वातावरण म भर रही थी। खिडकी पर खडी गायत्री न गाढ होते अधकार का अपन निराश दृष्टि पथ म बाधन का असफल प्रयास किया और फिर अपन म लौट आइ। प्राकृतिक दृश्या क प्रति उसक सारे आकषण के

तो वह और भी राख होती गई है जिसके चलते उसने आजीवन की यह ज्वाला पाल ली। उसको भी अगर इसकी लपट लग जाय तो आखिर इस त्याग और बलिदान का क्या लाभ ?

एक ज्वाला सुलगी थी गीती के अन्दर उस समय जब उसने नरेन्द्र को देखा था पहले पहल । नरेन्द्र, पहली भेंट का नरेन्द्र लगा था—स्वर्ग से उतरा एक देव पुत्र—श्री सौन्दर्य मे सम्पन्न एक मोहक मानव मूर्ति। मास्को के एक सांस्कृतिक समारोह मे भारतीय डेलिगेशन के एक सदस्य के रूप मे आया था वह और भारतीय दूतावास के एक वरिष्ठ अधिकारी की पुत्री के रूप म दर्शक दीर्घा म बैठी थी गायत्री। । नहीं, वह क्षण उसे अब भी नही भूलता—मधु भीगा स्वप्निल क्षण जिसम उसके तृषित नेत्र सस्वर कविता पाठ म लीन नरेन्द्र के नेत्रों से टकरा गए थे और उसे लगा था जैसे कोई उच्छृखल सरिता किसी सागर की गहराइयो म बंध गई हो। न जाने पिपासा का कौन-सा रूप सागर से गहरे नरेन्द्र के नेत्रों पर तैर रहा था जिसके चुम्बकीय आकर्षण ने उसके मन प्राण बाध कर रख दिए थे। नही, यह प्यास कोई साधारण प्यास नही थी। प्रथम दृष्टि विनिमय मे ही कंदुक की तरह उछल आने वाली वासनाजन्य तृष्णा से सर्वथा भिन्न थी यह पिपासा जिसे, नरेन्द्र की आखो म देखी थी गायत्री ने और उसने शायद उसी क्षण उसे सदा के लिए अवश कर दिया था और एक ऐसी आग सुलगा दी थी गायत्री के अन्दर जिसको बुझाने के प्रयास ने इस शाश्वत ज्वाला को जन्म दे दिया था।

"भारत जाकर मुझे भूल तो नही जाओगे नरेन्द्र ?" उसी दिन शाम को बिजली के दूधिया प्रकाश से जगमगाते मास्को की चौडी सपाट सडको पर अपने पिता की विशाल कार मे नरेन्द्र को घुमाते हुए और स्टियरिंग ह्वील से अपने दाहिने हाथ को उठा नरेन्द्र के कन्धे पर धीरे से रखते हुए उसने पूछा था।

"तुम्हारे दिल मे यह शका उठी ही क्यों ?" अपने कन्धे पर पड़े गायत्री के हाथ को अपनी लम्बी-लम्बी अगुलियो से सहलाते हुए वह अपने स्वर मे बाल-सुलभ सरलता भर कर पूछ बैठा था।

'यो ही। हमारी यह नन्ही-सी क्षणिक मुलाकात। उस पर रूस

और भारत के मध्य दूरी का असीम सा विस्तार । सशय स्वाभाविक है नरेन्द्र ?" बात करते-करते शायद गायत्री की आवाज म भीलापन उतर आया था ।

'या सशय तो हर प्यार का प्राण-स्रोत है तथा साथ ही उसका अनिवाय अग भी, पर अनावश्यक रूप स सशय की अतिशयता का शिकार हो जो कुछ सहज उपलब्ध है उससे भी स्वय को वचित रखना कोई बुद्धिमानी नहीं होती गीती ।' किसी गम्भीर दाशनिक की मुद्रा म उत्तर दिया था नरेन्द्र न और गीती की कोमल कलाई पर उसके हाथ की पकड बढ गई थी । एक अपरिचित सी उष्ण लहर गीती के सारे शरीर के हर अग-उपाग से गुजर गई थी और मास्को की उस ठडी शाम म भी उस लगा था कि उसकी पेशानिया पर पसीने की अनगिनत बूद उभर आई हैं । पता नही यह उष्णता नरेन्द्र क शब्दों की थी या उसकी हथेलियो की पकड की, पर उसने गीती के अन्दर एक भयानक परिवतन की सष्टि कर दी थी । बहुत देर तक वह इस उष्णता क नीचे नहाती सी रही थी स वह अपन बाथरूम क शावर क नीचे निरावरण खडी हो । और डी देर क बाद जब अपने म लौटी थी तो नरेन्द्र की बातो का इगित समझ दब स्वर म बोली थी

यह मान भी लिया जाय नरेन्द्र कि सन्निधता की अतिशयता का शिकार हो वतमान को बर्बाद करना कोई बुद्धिमानी नही पर नारी की प्रकृति स तुम शायद परिचित नहो । वह वतमान क भरपूर उपभोग म जितना विश्वास करती है उससे कम भविष्य की स्थिरता म नही । वह वतमान पर नाज तो कर सकती है उस पर फिसल भी पर इसके लिए वतमान की धरातल का चमकती रेत का नही बल्कि सुदढ चट्टान का होना चाहिए । अगर मुझस पूछा नरेन्द्र तो नारी चट्टान की सगमरमरी फिसलन की कायल है । बालू की राशि की मृगमरीचिका के चकाचौंध म पड अपनी भावनाओ को सदा क लिए रेतील वक्ष की गोद म सुला देने के लिए वह असहायता और विवशता की स्थिति म ही बाध्य होती है ।" न जाने ये बाते कसे उसके मुख से बाहर आ गई थी शायद उसके अन्दर का अभिजातीय सस्कार अनजाने उसके स्वरो पर चढ आया था ।

अपन कथन की कर्कशता का भान तो उसे हुआ था, पर तव तक पर्याप्त विलम्ब हो चुका था। कलाकार नरेन्द्र के भावुक हृदय ने किसी अत्यन्त सेंसिटिव वायरलेस-सट की तरह गायत्री के शब्द शब्द अक्षर-अक्षर को ठीक उनक स्वाभाविक रूप म पकड लिया था। जैसे किसी न किसी विशेष यन्त्र के द्वारा गायत्री के अभिजातीय हृदय का नग्न फोटो नरेन्द्र के मस्तिष्क के टलीविजन सट पर उतार दिया हो।

"नारी चट्टानी स्थिरता की आस्था का कायल है गीती" नरेन्द्र किसी चोट खाये हुए की तरह आहत स्वर म बोला था, "इसमे कोई आश्चर्य अथवा अस्वाभाविकता नही। यदि बुरा नही मानो तो नारी का पाषाणी रूप ही उसका प्राकृतिक और असली रूप है। उसका वाह्य जितना कोमल और सहज है अ तर उतना ही कठोर और दुर्भेद्य। तुमने जो कुछ कहा है, वह तुम्हारी जाति के अनुकूल ही है, पर इतना ध्यान रखना कि पुरुष यदि नारी-सहानुभूति की हल्की आच पर माम बनकर पिघल सकता है तो उसकी साधारण उपेक्षा पर ही वह एक ऐसी चट्टान बन सकता है जिसकी कठोरता नारी की कल्पना शक्ति के परे है। मैं अपने शब्द वापस लता हू और अब तुम मुझे उतार दो। मरा होटल आ गया है। इस विदेश म तुमने जो क्षणिक अपनत्व दिया है, मैं उसके लिए तुम्हारा कृतज्ञ हू।" बात बिगड गई थी और वह आसानी से बनने वाली नही थी, गीती न एसा अनुभव किया था और नरेन्द्र के होटल की तरफ गाडी मोड दी थी।

"सुनो तो।' न चाहते हुए भी न जान कम उसके मुह से यह बात निकल गई थी और कार के दरवाजे को ब द करता नरेन्द्र ठिठक कर खडा हो गया था।

"क्या मैं तुम्हारे होटल तक चल सकती हू ?' निलज्ज बनकर पूछ बैठी थी वह। अ दर का सारा अभिजातीय गव न जान कस चूर चूर हो गया था।

"नही, अलविदा।" गाडी को छोडकर आग बढते हुए नरेन्द्र ने कहा था, पर एसा कहते समयउसकी बडी-बडी आखें, गीती की आखा म एक क्षण के लिए गड गई थो और जब वह होटल की सीढिया चढ रहा था तो रूमाल उसकी आखा से लगा था। फिर पछाड खाकर वह अपनी सीट पर

गिर गइ थी आर जब अ यमनस्क हा लौटी थी तो नरेन्द्र की बड़ी-बड़ी सागर सी गहरी आखें उसक लाख प्रयत्न क बाद भी उसके अन्दर से निकाले नही निकल रही थी और उसे लग रहा था कि किसी भीषण आग म उसका अ दर-बाहर सब जला जा रहा है।

वह पहली आग गायत्री के लिए एक नूतन अनुभूति लेकर आई थी। नरे द्र से प्रथम मिलने के पश्चात् उसकी शा ति समाप्त हा गई थी और सात जागते उठने-बटते उसके अवचेतन म अवस्थित नरे द्र की सागरी आखें अपनी सारी गहराइयो और अपनी विशिष्ट तष्णा के साथ उसके समक्ष उभरन लगी थी। गायत्री का लगा था अगर इन आखा की इस असाधारण तृष्णा को शमित नही किया गया तो वह उसके अस्तित्व को ही समाप्त कर दगी। और जब लगातार दो महीन तक गायत्री के साते-जागत सपना म नरे द्र की पिपासित आखें दा ध्रुव तारो की तरह स्थिर चमकती रही तो भारतीय दूतावास से पता प्राप्त कर उसने नरे द्र को पत्र लिख दिया।

पत्र का उत्तर आया तो तब की गीती और आज की गायत्री उसे कई दिना तक कलजे मे भीचे रही जैस अ तर मे प्रज्वलित उस प्रथम अग्नि के शमन के निमित्त वह पत्र कोई मेघ-खड बन कर आ गया हो जो उसके हृदय क्षितिज पर छाकर अपनी सुधावषण से अ दर की सारी ज्वाला सोख लेगा पर नही, पत्र रूपी उस मेघ शावक ने अ दर की आग को बुझाने की अपेक्षा और सुलगा दिया। क्षणिक भेंट मे उत्प न प्यार का बिरवा पत्राचार के माध्यम से एक-य एक पनप गया और फिर तो पत्रा पर पत्रा क बाद उसन बढत-बढत उस वट वक्ष का रूप ले लिया जिसकी पातालगामी जडा का उखाड फेंकना गीती के लिए आसान नही था। हर पत्र के साथ उसके अवचेतन म स्थित नरेन्द्र की आखा की वह विचित्र चमक बढती गई।

जस ध्रुव तारा का प्रकाश बढता गया था, और इस बढते प्रकाश के साथ ही गीती के अ दर सुलगती वह पहली आग भीषण मे भीषणतर होती गई थी।

इन दूर चमकते ध्रुव तारा को सदा के लिए अपने अ तर म समेट लने क अलावा इनकी आच से बचने का कोई उपाय न देख गीती न नरे द्र

को एक लम्बा-सा निश्चयात्मक पत्र लिखा था।

मेरे नरेन्द्र

पता नहीं, मुझे तुम्हें इस रूप में सम्बोधित करने का कितना अधिकार प्राप्त है पर यह मेरी जाति की विवशता ही है कि उसने जिसे एक बार दिल में अपना मान लिया उसे आजीवन अपना मानने को बाध्य है। नहीं मेरा मतलब तुम पर कोई लाछन लगाना नहीं, न ही मैं मास्को की उस मनहूस शाम की तरह अपने किसी विवशहीन तर्क से तुम्हें रुष्ट ही करना चाहती हूं। मैं तो केवल अपनी विवशता की बात कर रही थी। तुमने मेरे पत्रों का छोटा ही सही, पर हर बार उत्तर दिया है, इसके लिए मैं तुम्हारी कृतज्ञ हूं। पर, तुमने शायद कभी मेरे अन्दर सुलगती उस सर्वग्रासी अग्नि की कल्पना नहीं की है जिसकी आंच में मैं लगातार जलती जा रही हूं। नहीं, कम-से-कम तुम्हारे पत्रों से ऐसा नहीं लगता कि तुम्हें मेरे अन्दर की व्यथा का किंचित मात्र भी भान है और ऐसा नहीं लगता है कि मेरे अन्दर की व्यथा तुम्हारे भीतर भी कुछ व्यग्रता पैदा करने में सफल हुई है। हो सकता है यह पुरुषोचित संयम ही हो, पर जहां तक मेरे संयम का प्रश्न है उसका बांध टूट चुका है और मुझमें इतनी शक्ति नहीं रही कि मैं अपनी व्यग्रता को अपने अन्तर की चहारदीवारियों में ही कैद रख सकूं।

नरेन्द्र यह सब हमारे पत्राचार का ही परिणाम नहीं है। और जैसे तुम्हें मेरे पत्रों से पहले ही ज्ञात हो गया, यह आग तो तुम्हारी आंखों ने मेरे अन्दर उसी समय सुलगा दी थी जिस समय पहले पहल वे मुझ पर टिकी थीं। मैंने आज तक किसी की प्रशंसा नहीं की, शायद तुम्हारी भी नहीं पर मेरे इस कथन में कोई अत्युक्ति नहीं कि तुम्हारा बाह्य व्यक्तित्व जितना आकर्षक और मधुर है तुम्हारा आन्तरिक व्यक्तित्व कहीं उससे ज्यादा प्रभावशाली और सम्पन्न। अगर सच कहूं तो तुम्हारी आंखों के आकर्षण ने जितना मुझे नहीं खींचा था उतना तुम्हारे स्वरों के जादू ने मुझे उस समय बांध लिया था जब तुम अपने स्वरचित काव्य का यहां के सांस्कृतिक समारोह में पाठ कर रहे थे।

हां, मुझे अफसोस है उस शाम के अपने व्यवहार पर, जब मेरे ही

आमन्त्रण पर तुम मेरी कार मे घूमने निकले थे। अब तक के अपने पत्रो मे मैंने शायद जानवझ कर ही उस घटना की चर्चा नही की है, पर अब जब म सब कुछ खोलकर तुम्हारे सामने रख ही रही हू ता मुझे यह स्वीकार करने मे कोई शम नही कि उस दिन मैने अकारण ही तुम्हारी भावनाओ को ठेस पहुचाया था और तुम्हारे अन्तर की विशालता का ध्यान न दे अपने सकीण विचारो को उस पर आरोपित कर तुम्हें सदिग्ध दृष्टि से देखा था, पर जो हुआ सो ठीक ही हुआ नरेन्द्र ! मरे गव को चूर चूर हाना ही था, और वह नही होता यदि उस शाम वह घटना नही घटती। और नारी को तुम नही जानते, नरेन्द्र ! अन्दर से चाहे वह जितनी कमजोर और भावुक हो, पर उसकी महात्वाकाक्षा एक महान शासक और विजेता की ही होती है। अपने प्रिय-पात्र को सदा के लिए अपने वश म कर अपनी मनमानी इच्छाओ के इगित पर उसे नचान म उमे जितना आनन्द और तुष्टि की उपलब्धि होती है उतना उसके इशारा पर नाचने मे नही। यह उसका दोष नही है नरेन्द्र ! युगा मे अवश और शापित नारी मे यदि शासन की यह भावना इतनी प्रबल है ता इसम उसका अपराध ही क्या ? खर, म अपने पक्ष म कोई तक नही प्रस्तुत करना चाहती, पर इतना स्वीकार करना अवश्य चाहती हू कि उस दिन जो तुमने अपनी उपेक्षा के द्वारा मेरे अभिमान का चूर चूर कर दिया वह अच्छा ही किया और सच पूछो तो तुम्हारे इसी उपेक्षा ने मुझे तुम्हारे इतन नजदीक खडा कर दिया है कि अब दूर भागना मेरे वश की बात नही।

पत्र शायद बहुत लम्बा हो रहा नरेन्द्र और मेरा मन्तव्य शायद अभी स्पष्ट भी नही हुआ। बिना किसी भूमिका के, सारी नारी सुलभ लज्जा का त्यागकर म तुमसे निवेदन कर रही हू कि मेरा अस्तित्व तुम्हारे बिना अधूरा ही है और मैं यह स्पष्ट करना चाहती हू कि जब तक मैं सदासवदा के लिए तुम्हारी नही बन जाती, मेरी व्यग्रता नही समाप्त होगी और मैं इसी तरह, तुम्हारे अभावजनित पीडा को नही बर्दाश्त कर तडपती रहूगी।

आशा है तुम मेरे पत्र का शीघ्र और आशा पूण उत्तर दागे तथा मुझ इस असह्य व्यथा से मुक्त करने का यत्न करागे।

तुम्हारे निणय की प्रतीक्षा म––तुम्हारी और केवल तुम्हारी

गायत्री

गीती के इस पत्र का जवाब नही आया। फिर दूसरे का भी नहीं, तीसरे का भी नही। और ध्रुव तार का दाहक प्रकाश बढता गया। नरेंद्र की इस आकस्मिक उदासीनता को वह उसका विश्वासघात माने, इसके लिए उसका विवेक प्रस्तुत नही था। उसके अनगनित पत्रा म प्रदर्शित प्यार की निरन्तर वद्धिशील मात्रा कृत्रिम हागी यह गायत्री की कल्पना के बाहर की बात थी। तो फिर विरक्ति ? सभव था। और यह सोचकर गीती का अन्दर-बाहर काप गया।

नरेंद्र के पत्रो से उतर आए बहुमुखी प्रतिभा और उसके विशाल व्यक्तित्व ने गीती के व्यक्तित्व का जैसे विलयन ही कर दिया था और इस विलयन को स्थायित्व प्रदान करने का उसका आन्तरिक सकल्प शनै शन प्रबल ही होता गया था। नरेंद्र, भारतीय सास्कृतिक मच रूपी एक सस्था से सम्बंधित था तथा साहित्य और सगीत के प्रति उसकी विशेष रुचि थी। उसका एक कविता सग्रह शीघ्र ही प्रकाशित हुआ था जिसे एक अखिल भारतीय सास्कृतिक सस्था ने पुरस्कृत भी किया था। ये सब बातें उसे नरेंद्र के पत्रा के द्वारा ही ज्ञात हुई थी और उसके साथ प्रकाशित कविता-सग्रह, जिसे उसने गीती को प्रकाशित होते ही प्रेषित किया था, को पढकर ता गीती को लगा कि उसकी सारी कविताए उसी को लेकर लिखी गई है।

और तब गीती एकदम टूट गई थी। बहुत दिनो की प्रतीक्षा क बाद और उसके कोई दजनो पत्रा के उत्तर म नरेंद्र का एक छोटा-सा पत्र आया था जिसमे मात्र इतना ही लिखा था कि वह गीती से किसी प्रकार का सम्बध नही रखना चाहता। उस रात गीती को लगा था कि दोना चमकते ध्रुव तार सहसा बुझ गए थे और एक सर्वव्यापी अधकार म उसका दम घुटा जा रहा था। रात भर जागकर उसने एक प्रतिज्ञा की थी और दूसरे दिन सुबह ही उसे नरेंद्र को प्रेषित कर दिया था।

जिसका वणन शायद वह नही कर सकता था, नरेन्द्र न लिखा था। उसकी आखो मे अगर गीती न ठीक से देखा होगा तो उसे लगा ही होगा कि प्यार की कसी शाश्वत भूख उनम तर रही थी। नहीं, मात्र वासना नहीं थी वह। किसी का सदा के लिए हो जाने, उस सदा सवन्ध क लिए अपना बना लेन की उत्कट चाह थी उसकी आखा म और गीती का देख कर उस लगा था उसकी लम्बी खोज पूरी होन का आ गई थी। पर काश वह गीती का अपना सकता! किसी का भी अपना सकता और उसके बाद जो कुछ नरेन्द्र न लिखा था वह और भयानक था। वह यह कि नरेन्द्र विवाहित था, उसके तीन बच्चे भी थे। पर, उसकी अनपढ और असस्कृत पत्नी ने कभी उसकी भावनाओ की कद्र नही की थी। पाच साल के वैवाहिक जीवन के पश्चात भी प्यार का एक कतरा भी नरन्द्र को उपलब्ध नहीं हुआ था और प्यार की शाश्वत भूख उसकी जीवन सगिनी बन कर रह गई थी। किसी का अपना सक, ऐसा कोई नही था। अपनी उपलब्धियो के द्वारा किसी की आखो म चमक ला सके, ऐसा कोई नहीं था। प्रेरणा और सहानुभूति क अभाव म उसके अन्दर का कलाकार मरा जा रहा था। काश, कोई उसे सहारा द सकता! उसके प्राणो मे प्रेरणा की सजीवनी फूक सकता! पर, कान उसके लिए सहारा बनगा? शायद कोई भी नही। पत्नी से वह 'डाइवोर्स' भी ल सकता था, उसके लिए वह तयार भी थी। पर, बच्चे? वह नहीं चाहता था कि उसक फून से बच्चे उससे अलग हो अथवा कोई नई मा आकर अपन बच्चो की ममता म फसकर उनकी उपेक्षा करे। अपने उन बच्चो से उसे अपनी कला-कृतियो की तरह ही मोह था और कोई भी कलाकार अपनी कृतियो को धूमिल होते नही दख सकता। ऐसी हालत मे नरेन्द्र क लिए यही अच्छा था कि अपनी भूख अपने ही अन्दर समेट वह घुट घुट कर मर जाय। गीती से उसन प्रेरणा अवश्य चाही थी, सोचा था दूर का यह प्यार भी उसके कलाकार को मरने से बचा लेगा, पर शायद यह भी नहीं बदा था उसकी किस्मत म। गीती का प्रस्ताव उसके लिए मान्य नही था। अपने बच्चो पर वह अन्य बच्चो की छाया भी नही पडने देना चाहता। उसके लिए वह कोई भी त्याग कर सकता था।

नरेन्द्र के पत्र को पढने के बाद एक सप्ताह तक गीती चैन से नही रह पाई थी। नही, अपन सपना के टूट जाने का उसे उतना गम नही था जितना उसे नरेन्द्र की चिता थी। बेचारा नरन्द्र, उतना बडा कलाकार और भाग्य की विडम्बना का शिकार ! नही उसे नरेन्द्र को सहारा देना ही हागा, उसके कलाकार को मरने से बचाना होगा । चाहे इसके लिए उसे स्वय मिट जाना पडे और अगले एक सप्ताह तक वह एक भीषण निणय लेने मे व्यस्त रही थी। उसके पैर रह रह कर डगमगा जात, उसके अन्दर की औरत चीत्कार कर उठती। हर रात वह अपन सकल्प पर दृढ होती और सुबह जब वह उस पूरा करने चलती सिसक कर पीछे मुड जाती। उसकी आत्मा जल विहीन मछली की तरह छटपटा उठती और वह आचल म मुह ढक्कर फफक पडती। नही, यह सभव नही यह सभव नही था, यह स भ व । अपन निणय को वास्तविकता का रूप देने को प्रस्तुत होते ही उसका अन्दर-बाहर आदोलित हो जाता और उसके अन्दर की कुआरी, अनब्याही औरत विद्रोह कर पडती और उस अपने निणय पर फिर स विचार करने का बाध्य हाना पडता। पर, आठव दिन उसन अपन को मास्को के एक 'फमिली प्लनिंग क्लिनिक' के दरवाजे पर पाया और उसके दूसरे ही दिन नरेन्द्र को पत्र लिखकर छाड दिया—अब तुम तुझे खुशी से अपना सकत हो नरेन्द्र ! अब मुझे कभी बच्चा नही होगा, कभी नही ।

सोफा पीस मे धसी गायत्री की आखे न जाने कब छलछला उठी। आखा का पाछ कर वह उठी और दरवाजे के पर्दे को गिराकर उत्तर की खिडकी पर आ गई। बाहर सब कुछ ठडा था—बर्फीला। न जाने गायत्री का क्या लगा कि शायद अब सूर्योदय नही होगा और हिमालय की गोद कभी नही पिघलेगी।